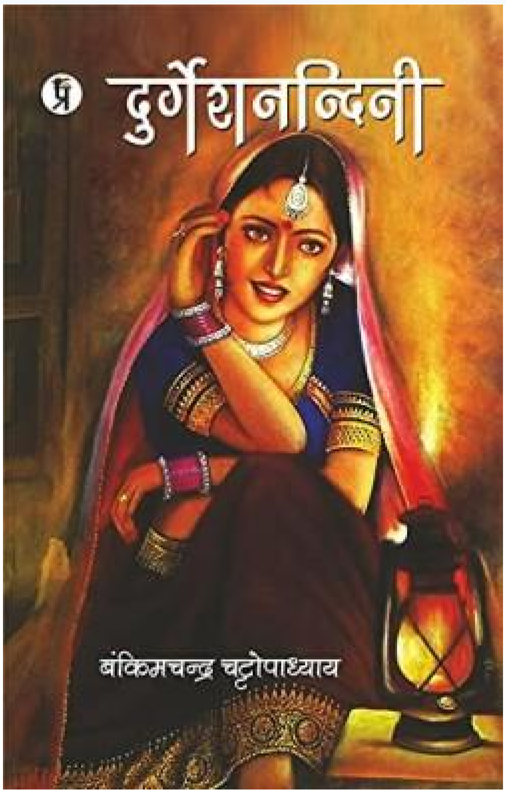
Durgeshnandini (Bangla Novel in Hindi) By Bankim Chandra Chattopadhyay/Chatterjee



प्रथम खण्ड

प्रथम परिच्छेद : देवमन्दिर

बङ्गदेशीय सम्वत् ९९८ के ग्रीष्मकाल के अन्त में एक दिन एक पुरुष घोड़े पर चढ़ा विष्णुपुर से जहानाबाद की राह पर अकेला जाता था। सायंकाल समीप जान उसने घोड़े को शीघ्र हांका क्योंकि आगे एक बड़ा मैदान था यदि दैव संयोग से अंधेरा होजाय और पानी बरसने लगे तो यहां कोई ठहरने का अस्थान न मिलेगा। परन्तु संध्या हो गई और बादल भी घिर आया और रात होते २ ऐसा अँधेरा छा गया कि घोड़े का चलाना कठिन होगया केवल कौंधे के प्रकाश से कुछ कुछ दिखाई देता था और वह उसी के सहारे से चलता था। थोड़े समय के अनन्तर एक बड़ी आंधी आई और बादल गरजने लगा और साथही पानी भी बरसने लगा और पथिक को मार्ग ज्ञान कुछ भी न रहा। पथिक ने घोड़े की रास छोड़ दी और वह अपनी इच्छानुसार चलने लगा। कुछ दूर जाकर घोड़े ने ठोकर ली, इतने में बिजली भी चमकी और आगे एक भारी श्वेत वस्तु देख पड़ी। उसको दूना अटारी समझ वह पुरुष घोड़े से उतर पड़ा और जाना कि घोड़े ने इसी पत्थर की सीढ़ी में ठोकर खाई थी। समीपवर्ती गृह का अनुभव कर उसने घोड़े को स्वेच्छा विहार करने को छोड़ दिया और आप धीरे २ सीढ़ी टटोल २ चढ़ने लगा और विद्युत प्रकाश द्वारा जान लिया कि जिसको अटारी समझा था वह वास्तविक देवमन्दिर है परन्तु कर

स्पर्श द्वारा जाना कि द्वार भीतर से बन्द है। मन में चिन्ता करने लगे कि इस जन्य शून्य स्थान में इस समय भीतर से मन्दिर को किसने बन्द किया और वृष्टि प्रहार से घबरा कर केवाड़ा भड़भड़ाने लगे। जब कपाट न खुला तो चाहा कि पदाघात करें परन्तु देवमन्दिर की अप्रतिष्ठा समझ रुक गए तथापि हाथही से ऐसे ऐसे धक्के लगाये कि केवाड़ा खुल गया। ज्योंही मन्दिर में घुसे कि भीतर चिल्लाने का शब्द सुनाई दिया और एकाएक वायु प्रवेश से भीतर का दीप भी ठंडा होगया परन्तु यह न मालूम हुआ कि मन्दिर में कौन है, मनुष्य है, कोई मूर्ति है या क्या है। निर्भय युवा ने मुस्करा कर पहिले उस मंदिर के अदृश्य देवता को प्रणाम किया और फिर बोला कि "मन्दिर में कौन है?" परन्तु किसी ने उत्तर न दिया केवल आभूषण की झनझनाहट का शब्द कान में पड़ा, टूटे द्वार से वायु प्रवेश के रोकने के निमित्त दोनों कपाटों को भली भांति लगा कर पथिक ने फिर कहा "जो कोई मन्दिर में हो सुनो, मैं शस्त्र बांधे द्वार पर विश्राम करता हूं यदि कोई विघ्न डालेगा फल भोगेगा यदि स्त्री हो तो सुख से विश्राम करे राजपूत के हाथ में जब तक तलवार है कोई तुम्हारा रोआं टेढ़ा नहीं कर सकता।"

मन्दिर में से स्त्री स्वर में यह शब्द सुनाई दिया कि "आप कौन हैं?"

पथिक ने घबड़ा कर यह उत्तर दिया, जान पड़ता है कि यह शब्द किसी सुन्दरी का है। "तुम मुझको पूछकर क्या करोगी?"

फिर शब्द हुआ कि "मैं डरती हूं।"

युवा ने कहा "मैं कोई हूं मुझको कोई उचित नहीं है कि मैं तुमको अपना पता बताऊं परन्तु मेरे रहते स्त्रियों को किसी प्रकार का भय नहीं है।"

उस स्त्री ने कहा "तुम्हारी बात सुनकर हमको बड़ा साहस हुआ, नहीं तो हम मरी जाती थीं, वरन अभी तक हमारी सखी घबराई हुई है। हम सांझ को इस शैलेश्वर की पूजा को आई थी जब पानी बरसने लगा हमारे कहार और दास दासी हमको त्याग कर नहीं मालूम कहां चले गये।"

युवा ने उनको सन्तोष दिया और कहा कि “तुम चिन्ता मत करो अभी विश्राम करो कल प्रातःकाल तुम्हारे घर तुम्हें पहुंचा दूंगा।” स्त्री ने यह सुन कर कहा “शैलेश्वर तुम्हारा भला करें।”

आधी रात को आंधी पानी बन्द हो गया तब युवा ने कहा “तुम थोड़ी देर धीर धारण पूर्वक यहां ठहरो मैं नि-कट ग्राम से एक दिया जला लाऊं।”

यह बात सुन कर उस सुन्दरी ने कहा, महाशय ग्राम दूर है इस मन्दिर का रक्षक समीपही रहता है, चांदनी निकल आई है, बाहर से उसकी कुटी देख पड़ेगी वह अकेला इस उजाड़ में रहता है इस कारण अग्नि की सामग्री सर्वदा उसके गृह में रहती है।

तदनुसार युवा ने बाहर आकर रक्षक के गृह को देखा और द्वार पर जाकर उसको जगाया। रक्षक ने भय के मारे पहिले द्वार नहीं खोला परन्तु भीतर से देखने लगा कि कौन है, बहुत देखा पर पता नहीं लगा परन्तु मुद्रा प्राप्ति का अनुभव कर बड़े कष्ट से उठा और बहुत ऊंच नीच सोच विचार द्वार खोल कर दीप जला दिया।

पथिक ने दीपक प्रकाश द्वारा देखा कि मन्दिर में सङ्गमरमर की एक शिव मूर्ति स्थापित है और उस मूर्तिके पिछाड़ी दो कामिनी खड़ी हैं। एक जो उसमें से नवीन थी दीपक देखतेही सिमट कर सिर झुका के बैठ गई परन्तु उसकी खुली हुई कलाई में मणिमय माड़वाड़ी चूड़ी और विचित्र कारचोबी का परिधान और सर्वोपरि हेममय आ-भरण देख कर ज्ञात हुआ कि यह नीच जाति की स्त्री नहीं है। दूसरी स्त्री के परिच्छेद से मालूम हुआ कि यह उस नवीन की दासी है और वयस भी इसकी अनुमान पैंतीस वर्ष की थी, सम्भाषण समय युवा ने यह भी देखा कि उन दोनों में से किसी का पहिनावा इस देश के समान नहीं है परन्तु आर्य्यदेश वासी स्त्रियों की भांति है। उसने मन्दिर में उचित स्थान पर दीपक को धर दिया और स्त्रियों की ओर मुंह करके खड़ा हुआ। दिये की जोति उनपर पड़ने से स्त्रियों ने जाना कि उनकी उम्र २५ वर्ष से कुछ अधिक होगी और शरीर इतना स्थूल था जैसे देव, और आभा उसकी हेम को भी लज्जित करती थी और उसपर कवचादि राजपूत जाति के वस्त्राभरण और भी शोभा देते थे, कमर में रेशमी परतला पड़ा था और उसमें तलवार लटकती थी और

हाथ में एक लंबा बर्छा था, प्रशस्त ललाट में हीरा चमक रहा था और कान में मणि कुण्डल पड़ा था ओर वक्षस्थल में हीरे की माला चित्त को मोहे लेती थी।

परस्पर के समारम्भ से दोनों ओर परिचय निमित्त विशेष व्यग्रता थी किन्तु कोई अग्रसर नहीं हुआ।

पहिले युवा ने अपने को उद्वेग रहित करने की इच्छा कर बड़ी स्त्री से कहा "जान पड़ता है तुम किसी बड़े घर की स्त्री हो परन्तु पता पूछने में संकोच मालूम होता है किन्तु हमारे पता न बताने का जो कारण है वही तुम्हारा भी हेतु नहीं होसक्ता अतएव दृढ़ता पूर्वक जिज्ञासा करता हूं।

स्त्री ने कहा, महाशय हमलोगों को पहिले अपना पता बताना किसी प्रकार योग्य नहीं है।

युवा ने कहा कि पता बतलाने का पहिले और पीछे क्या?

फिर उसने उत्तर दिया कि स्त्रियों का पताही क्या? जिसका कोई अल्ल नहीं वह अपना पता क्या बतावेंगी? जो सर्वदा पर्दे में रहा करती हैं वह किस प्रकार अपने को प्रख्यात करें? जिस दिन से विधाता ने स्त्रियों को पति के नाम लेने को मना किया उसी दिन से उनको बेपते कर दिया।

युवा ने इसका कुछ उत्तर न दिया क्योंकि उनका मन दुर्चित्त था।

नवीना स्त्री अपने घूंघट को क्रमशः उठाकर सहचरी के पीछे तिरछी चितवन से युवा को देख रही थी। वार्तालाप करते २ पथिक की भी दृष्टि उसपर पड़ी और दोनों की चार आंखें हुंई और परस्पर अलौकिक आनन्दप्राप्ति पूर्वक दोनों के नेत्र ऐसे लड़े कि पलकों को भी अपना सहज स्वभाव भूल गया और ऊपर ही टँग रहीं परन्तु लज्जा ने झट आकर स्त्री के नैन कपाट को बन्द कर दिया और उसने अपना सिर झुका लिया। जब सहचरी ने अपने वाक्य का उत्तर न पाया तो पथिक के मुख की और देखने लगी और उनके गुप्त व्यवहार को समझ कर उस नवीना से बोली, "क्यों ! महादेव के मन्दिरही में तूने प्रेमपाश फैलाया ?"

नवीना ने सहचरी से उसकी उङ्गली दबाकर धीरे से कहा 'चल बक नहीं।' चतुर सहचरी ने अपने मन में अनुमान किया कि इन लक्षणों से ज्ञात होता है कि आज यह लड़की इस परम सुन्दर युवा पुरुष को देख मदन बाणबिद्ध हुई और चाहे कुछ न हो पर कुछ दिन पर्य्यन्त इसको शोच अवश्य होगा और सब सुख क्लेशकर जान पड़ेगा अतएव इसका उपाय अभी से करना उचित है। पर अब क्या करूं! यदि किसी प्रकार से इस पुरुष को यहां से टालूं तो अच्छा हो। यह सोच बोली कि महाशय स्त्री की जाति ऐसी है कि उसको वायु से भी कलंक लगता है और आज इस आंधी से बचना अति कठिन है, अब पानी बन्द हो गया है धीरे धीरे घर चलना चाहिये।

युवा ने उत्तर दिया कि यदि अकेली इतनी रात को तुम पैदल जाओगी तो अच्छा नहीं, चलो मैं तुमको पहुंचा आऊं, अब आकाश निर्म्मल होगया, मैं अब तक अपने स्थान को चला जाता परन्तु मुझको तुम्हारी रूपराशि सखी का अकेली जाना अच्छा नहीं दिखता, इस कारण अभी तक यहां ठहरा हूँ। कामिनी ने कहा कि आपने हमारे ऊपर बड़ी दया की और कृतघ्नता के भय से हमलोग और कुछ आप से नहीं कह सकते। महाशय स्त्रियों की दुर्दशा में आपके सामने और क्या कहूं हमलोग तो स्वभाविक अविश्वासपात्र हैं यदि आप चलकर हमको पहुंचा आइयेगा तो यह हमारा सौभाग्य है किन्तु जब हमारा स्वामी इस कन्या का पिता पूछेगा कि तुम इतनी रात को किसके सङ्ग आईं तो यह क्या उत्तर देगी।

थोड़ी देर सोच कर युवा ने कहा "कह देना कि हम महाराज मानसिंह के पुत्र जगतसिंह के साथ आईं हैं।"

इन शब्दों को सुन कर उन स्त्रियों को बिज्जुपात के घात समान चोट लगी और दोनों डर कर खड़ी हो गईं। नवीना तो शिव जी की प्रतिमा के पिछाड़ी बैठ गई किन्तु दूसरी स्त्री ने गले में कपड़ा डाल कर दण्डवत किया और हाथ जोड़ कर बोली "युवराज! हमने बिना जाने बड़ा अपराध किया, हमारी अज्ञता को आप क्षमा करें।"

युवराज ने हँसकर कहा यह अपराध क्षमा के योग्य नहीं है यदि अपना पता दो तो क्षमा करूं नहीं तो अवश्य दण्ड दूंगा।

मधुर सम्भाषण से सर्वदा रस का अधिकार होता है इस कारण उस सुन्दरी ने हंस कर कहा कि कहिए क्या दण्ड दीजिएगा, मैं प्रस्तुत हूँ।

जगतसिंह ने भी हंस कर कहा कि मेरा दण्ड यही है कि तुम्हारे साथ तुमको चल कर पहुंचा आऊं।

सहचरी को जगतसिंह के सन्मुख नवीना का पता न बताने का कोई विशेष कारण था जब उसने देखा कि ये साथ चलने को उद्यत हैं तो बड़े संकट में पड़ी क्योंकि फिर तो सब बाते खुल जाएँगी। अतएव सिर झुका कर रह गई।

इस अवसर पर मन्दिर के समीप बहुत से घोड़ों के आने का शब्द सुनाई दिया और राजपूत ने जल्दी से बाहर निकल कर देखा कि सैकड़ों सवार चले जाते हैं किन्तु उनके पहिरावे से जाना कि मेरीही सी सेना है। जगतसिंह युद्ध के कारण विष्णुपुर के प्रदेश में जाकर और शीघ्र एक शत अश्वारोहिनी सेना लेकर पिता के पास चले जाते थे। सन्ध्या हो जाने के कारण राजकुमार दूसरी राह पर चले गये और सवार लोग और राह होगए थे। अब इन्होंने उन को देख कर पुकार कर कहा कि “दिल्ली के राजा की जय होय” यह शब्द सुन उन में से एक इनके निकट आया और इन्होंने कहा “धरमसिंह, मैं आंधी पानी के कारण यहीं ठहर गया और तुम्हारी राह देख रहा था।”

धरमसिंह ने प्रणाम कर के कहा कि “हम लोगों ने आपको बहुत ढूंढ़ा परन्तु जब आप न मिले तो घोड़े की टाप देखते चले आते हैं घोड़ा यहीं बट की छांह में खड़ा है अभी लिए आता हूं।”

जगतसिंह ने कहा तुम घोड़ा लेकर यहीं ठहरो और दो आदमियों को भेजो किसी निकटस्थ ग्रामसे एक डोली और कहार ले आवें और शेष सेनासे कहो कि आगे बढ़ें।

धरमसिंह यह आज्ञा पाकर बड़े विस्मित हुए किंतु स्वामि भक्तिता के विरुद्ध जान चुप चाप जाकर सैन्यगण से इस अभिप्रायको कह दिया। उनमें से कितनों ने डोलीका नाम सुन मुसकिरा कर कहा “आज तो नए २ ढङ्ग देखने में आते हैं” और कितनों ने कहा “क्यों नही! राजाओं की सेवाको अनेक स्त्री रहा करतीं हैं।”

इतने में औसर पा घूंघट खोल उस नवीना सुन्दरी ने सहचरीसे कहा क्यों, विमला! तुम ने राजपुत्रको पता क्यों नहीं बतलाया? उसने उत्तर दिया कि इसका समाचार मैं तुम्हारे पिता के सामने कहूंगी अब यह क्या कोलाहल होने लगा?

नवीना ने कहा जान पड़ता है कि राजपुत्र को ढूंढ़ने के लिये कोई सेना आई है। जहां युवराज आप प्रस्तुत हैं वहां तू चिन्ता किस बात की करती है?

इधर राजपुत्र के सवार डोली कहार लेनेको गए उधर वही डोली कहार और रक्षक जो उन स्त्रियों को लेआए थे आन पहुंचे। दूर से युवराज ने उनको देखकर मन्दिर में जा सहचरी से कहा "कि कई सिपाही डोली कहार लिये आते हैं बाहर आकर देखो तो क्या वे तुम्हारे ही आदमी है"? विमला ने बाहर आकर देखातो वही आदमी थे। तब युवराजने कहा कि अब हमारा यहां ठहरना उचित नहीं है यदि ये लोग हमको इस स्थान पर देखलेंगे तो अच्छा न होगा, लो अब मैं जाता हूँ और महादेवजी से यही विनती करताहूँ कि तुम लोग कुशल पूर्वक अपने घर पहुंच जाओ और तुमलोगों से यह निवेदन है कि हमारे मिलने का समाचार इस सप्ताह में किसी से न कहना और न हमको भूल जाना, यह लो अपना स्मारक चिन्ह यह एक सामान्य वस्तु तुम को देता हूं और मैंने जो तुम्हारी सखी का पता नहीं पाया यही एक चिन्ह अपने पास रक्खूंगा यह कह कर और अपने गले से मोती की माला निकाल विमला के गले में डाल दिया। विमला ने इस अमूल्य मणिमाला को पहिन युवराज को प्रणाम करके कहा महाराज मैंने जो आप को पता नहीं बताया इस्से आप अप्रसन्न न हो इसका एक विशेष कारण है परन्तु यदि आपको इसकी बड़ी इच्छा हो तो यह बतलाइये कि आज के पन्द्रहवें दिन आपसे कहां भेंट हो सकती है।

जगतसिंह ने कुछ सोच कर कहा कि आज के पन्द्रहवे दिन रात को मुझ से इसी मन्दिर में भेंट होगी और यदि उस दिन न मिलूं तो जान लेना कि फिर मुझसे भेंट न होगी।

'ईश्वर आप को कुशल से रक्खे' यह कह कर विमला ने फिर प्रणाम किया।

युवा ने फिर एक बार अतृप्त लोचन से उस सुन्दरी की ओर दृष्टिपात करके और उसकी मन मोहनी मूर्ति को अपने हृदय में स्थापित कर घोड़े पर चढ़ प्रस्थान किया।

द्वितीय परिच्छेद : मोगल पठान

रातही में जगतासंह ने शैलेश्वर के मन्दिर से कूच किया। पाठक लोगों को यह संदेह होगा कि जगतसिंह राजपूत बङ्गदेश में क्या करने को आये और क्यों इस उजाड़ में अकेले फिरते थे अतएव तत्सामयिक बङ्गदेशीय राजकीय घटना का कुछ संक्षेप वर्णन इस स्थान पर उचित जान पड़ता है।

पहिले इस देश में बखतियार खिलजी ने यवन विजय पताका स्थापित किया और कई सौ बरस तक पठान लोग उसकी ओर से निष्कण्टक राज्य शासन करते रहे ९३२ के साल में प्रसिद्ध बाबर सुल्तान ने दिल्ली के महाराज इब्राहीम लोदी को पराजय करके सिंहासन छीन लिया और आप राजा बन बैठा। किन्तु उसी समय बङ्गदेश में तैमूर वंश वालों का अधिकार नहीं हुआ। जितने दिन तक मोगल कुल दीपक अकबर महाराज का उदय नहीं हुआ तब तक इस देश में पठान लोग स्वाधीन राज करते थे। निर्बुद्धि दाऊदखां ने बुरे समय में सुप्तसिंह के ऊपर हाथ उठाया और अपने कर्म के फल से अकबर के सेनापति मनाइमखां से पराजित होकर ९८२ के साल में उडिस्सा को भाग गया और बंगाल का राज मोगलियों के हाथ में आगया, पठानों ने इस नये देश में ऐसी स्थित पकड़ी कि वहां से उनको उठाना मोगलियों को बहुत कठिन होगया। अन्त को ९८६ साल में अकबर के प्रतिनिधि खांजहांखां ने उनको दूसरी बार हरा कर इस देश को भी अपने हाथ में कर लिया। इसके अनन्तर एक और बड़ा उपद्रव हुआ अकबरशाह ने राज कर प्राप्ति की जो नई प्रणाली प्रचलित की थी उससे जागीरदार बड़े अप्रसन्न हुए और सब बिगड़ खड़े हुए। यह औसर पाय उडिस्सा के पठानों ने भी सिर उठाया और कतलूखां को अपना स्वामी बना देश को स्वाधीन कर लिया। वरन मेदिनीपुर और विष्णुपुर को भी लेलिया।

आजिमखां और शहबाज़खां आदि चतुर चतुर सेनाध्यक्ष आये पर किसीने शत्रुजित देश पुनःप्राप्ति न कर पाया। अन्त को इस दुस्तर कर्म्म के साधन हेतु एक हिन्दू योद्धा भेजा गया।

जब मुसलमान की नवधर्मानुरागी सेना हिमालय के शिखर से होकर भारतभूमि में उतरे उस समय पृथ्वीराज आदि बड़े बड़े राजपूत योद्धाओं ने बड़ी शूरता से उनको रोका परन्तु

विधाता को तो यही इच्छित था कि इस देश की दुर्दशा हो। राजपूत राजाओं में फूट उत्पन्न हुई और परस्पर विवाद होने लगा और मुसलमानों ने एक एक करके संपूर्ण राजाओं को जीत लिया और कुल भरतखण्ड उनके आधीन होगया परन्तु क्षत्रियों का तेज हीन नही हुआ बहुतेरे स्वाधीन भी रहे और आज तक (यद्यपि मुसल्मानों का राज जाता रहा) यवनों को समर में प्रचारते रहे और बहुतेरों को प्राजित भी किया। किन्तु बहुतेरे ऐसे टूट गये कि उनको कर देना पड़ा वरन दुष्ट यवन कुल के सन्तुष्टार्थ अपनी कन्या भी उनको देते थे। वे लोग भी इनसे मित्रता और बंधुता का बर्ताव करने लगे और फिर यही लोग उनके सेनाध्यक्ष आदि भी होने लगे। मोगलियों में सब से अकबर बड़ा बुद्धिमान था। उसने विचारा कि इस देश के राज काज के साधन हेतु इसी देश के मनुष्य बहुत उत्तम हैं। अन्य देशी से यह काम भली भांति नहीं हो सकता और युद्ध के काम में तो राजपूतों से बढ़कर कोई है ही नहीं। इसलिये वह सर्वदा इसी देश के आदमियों से काम लेता था और विशेष करके क्षत्रियों से।

जिस समय की चर्चा हम कर रहे हैं, उस समय दूसरे राजपूत अधिकारियों में महाराज मानसिंह सबसे प्रधान थे और वे अकबर के पुत्र सलीम के साले भी थे। जब आज़िमखां और शहबाज़खां से उड़ीसा पराजित नहीं हुआ तो महाराज अकबर ने इन्हीं को बङ्गाल और बिहार का अधिकार देकर भेजा।

९९७ साल में मानसिंह ने पटने में आकर पहिले पहिल तत्सामयिक उपद्रव को शान्त किया और दूसरे वर्ष उड़ीसा के जीतने की इच्छा करके उस ओर चले। मानसिंह ने पहिले पटने में पहुंचकर और वहां रहने की अभिलाषा से बङ्गाल के शासन निमित्त सैयद खां को अपना प्रतिनिधि नियत किया था सैयदखां यह अधिकार पाय उस समय की राजधानी तण्डा नगर में अपना मुख्य स्थान किया। समर में जाकर मानसिंह ने इस अपने प्रतिनिधि को बुलवाया और लिख भेजा कि सेना लेकर बर्द्धमान में हमको आकर मिलो।

राजा बर्द्धमान में पहुंच गए और सैयद खां ने लिख भेजा कि हमारी सेना एकतृत करने में बिलंब होगा तब तक वर्षा काल आ जायगा यदि आप वहीं पर ठहरे रहें तो मैं शरद ऋतु के आरम्भ में आपसे आकर मिलूंगा।

राजा ने दारुकेश्वर के तीर पर जहानाबाद नाम ग्राम में अपना डेरा डाल दिया और सैयदखां की राह देखने लगे। वहां के रहने वालों से मालूम हुआ कि उनकी यह दशा देख कतलूखां का साहस और भी बढ़ गया और वह जहानाबाद के समीप लूट कर रहा है।

राजा ने घबराकर उसके बल और अभिप्राय आदि का पता लगाने के लिये अपने एक प्रधान सेनाध्यक्ष को भेजना उचित समझा। राजा के साथ उनका प्रिय पुत्र जगतसिंह भी युद्ध में आया था इस दु:साध्य कार्य के भार लेने का उसकी इच्छा देख राजा ने एक सत सवार साथ करके उसीको इसका पता लगाने के निमित्त भेजा राजकुमार बहुत शीघ्र काम करके लौट आये थे उसी समय मन्दिर में पाठक लोगों से उनसे भेट हुई।

तृतीय परिच्छेद : नवीन सेनापति

शैलेश्वर के मन्दिर से चलकर युवराज ने 'लशकर' में पहुंच कर पिता से कहा कि पचास सहस्त्र सेना लेकर पठान लोग धरपुर के ग्राम में डेरा डाले पड़े हैं और आस पास के गांवों को लूट रहे हैं वरन स्थान स्थान पर दुर्गनिर्माण पूर्वक निर्विघ्न रूप वास करते हैं। मानसिंह ने सोचा कि इस उपद्रव को शीघ्र शान्त करना चाहिये किन्तु यह काम बड़ा कठिन है और संपूर्ण सेना को एकत्र करके सबको सुनाकर कहा कि "क्रमशः गांव २ परगना २ दिल्ली के महाराज के हाथ से निकला जाता है अब पठानों को दण्ड अवश्य देना चाहिये तुम लोग बताओ कि इसका क्या उपाय है? उनकी सेना भी हमसे बढ़कर है, यदि उनसे युद्ध करैं तो पहिले तो जीतने की सम्भावना नहीं और यदि ईश्वर सहाय हो तो उनको देश से निकालना सहज नहीं है। सब लोग विचार कर देखो यदि लड़ाई में हार गये तो फिर प्राण बचाना कठिन है किन्तु उड़ीसा के पुनः प्राप्ति की आशा भी न छोड़ना चाहिये। सैयदखां की भी राह देखना उचित है और बैरी दमन का भी उपाय अवश्य है अब तुम लोगों की क्या राय है?"

बूढ़े २ सेनाध्यक्षों ने एक मत होकर उत्तर दिया कि सैयदखां का मार्ग प्रतीक्षा अवश्य करना चाहिए मानसिंह ने कहा कि मेरे समझ में आता है कि थोड़ी सेना लेकर तुममें से एक आदमी जाकर वैरी का रंगढंग देख आवे। एक पुराने सेनाधिकारी ने कहा "महाराज जहां संपूर्ण सेना कुछ नहीं कर सकती वहां थोड़ी सेना जाकर क्या करेगी?" फिर महाराज ने कहा

कि यह सेना मैं लड़ने को नहीं भेजता हूं, वे लोग छिपकर पठानोंका पता लेते रहेंगे और उनको भय दिखावेंगे।"

उस मोगल ने कहा ऐसा कौन साहसी है जो जान बूझ कर काल के मुँह में जायगा।

मानसिंह ने झुँझला कर कहा क्या इतने राजपूत और मोगल खड़े हैं उनमें से ऐसा कोई बीर नहीं है जो मृत्यु से न डरता हो?

इस बात के सुनतेही पाँच सात मोगल और राजपूत आगे आनकर बोले महाराज "हम सब तैयार हैं।" जगतसिंह भी उस स्थान पर प्रस्तुत थे उनका वय अभी बहुत कम था सबके पीछे खड़े होकर बोले आज्ञा हो तो मैं भी दिल्लीश्वर के कार्यसाधन हेतु बद्ध परिकर हूं।

राजा मानसिंह ने आश्चर्य्य पूर्वक कहा 'क्यों न हो' आज मैंने जाना कि अभी मोगल और राजपूत के बंश में बीरता का अंश है। तुम सब लोग इस कठिन काम के करने को खड़े हो अब मैं किसको भेजूं और किसको न भेजूं।

एक पारिषद ने हंसकर कहा कि महाराज यदि बहुत आदमी जाने को प्रस्तुत हैं तो बहुत अच्छी बात है इस उपरा चढ़ी में आपकी सेना का व्यय कम हो जायगा, जो सबसे थोड़ी सेना लेकर जाने कहे उसीको भेजिये।

राजा ने इस उत्तम उपाय को स्वीकार किया और पहिले जो सामने आया था उससे पूछा कि तुम कितनी सेना लेकर जाना चाहते हो? उसने उत्तर दिया कि हमको पन्द्रह सहस्त्र सेना चाहिये। राजा ने कहा कि यदि हम तुम को पन्द्रह सहस्त्र सिपाही देदें तो हमारे पास फिर कुछ न रह जायगा, कोई दस हजार लेकर नहीं जा सकता?

सब सेनापति चुप रहगए, अन्त को राजा का स्नेह पातृ यशवन्तसिंह नामी एक राजपूत योद्धा तैयार हुआ। राजा प्रसन्न चित्त होकर सबकी ओर देखने लगे। कुमार जगतसिंह देर से राजा के दृष्टयाभिलाषी खड़े थे ज्योंही राजा ने उनकी ओर देखा उन्होंने बिनय पूर्वक कहा कि महाराज की आज्ञा हो तो मैं केवल पांच सहस्त्रपदाति लेकर कतलूखां को सुवर्णरेखा के पार उतार आऊं।

राजा मानसिंह सनाटे में आ गए सेनापति भी सब कानाफूसी करने लगे।

थोड़ी देर के बाद राजाने कहा पुत्र मैंने जाना कि तू क्षत्री कुल तिलक होगा किन्तु अभी तुम इस काम के योग्य नहीं हो।

जगत सिंह ने हाथ जोड़ कर कहा कि यदि कार्य्य सिद्ध न हो और सेना को किसी प्रकार हानि पहुँचे तो मेरा उचित दण्ड किया जाय। राजा मानसिंह ने कुछ सोच कर कहा कि मैं तुम्हारी इच्छा को भंग न करूँगा अच्छा तुम्ही जाओ और आँखों में आँसु भर कर पुत्र को हृदय से लगाकर विदा किया और दूसरे सकल सेनापति अपने २ स्थान को चले गये।

चौथा परिच्छेद : मान्दारणगढ़

जगतसिंह जिस मार्ग से विष्णुपुर से जहानाबाद को गए थे उसका चिन्ह अद्य पर्य्यन्त बर्तमान है। उसके दक्षिण मान्दारणगढ़ नाम एक ग्राम है और जिन स्त्रियों से मन्दिर में साक्षात हुआ था वे वहां से चलकर इसी गांव की ओर गई। प्राचीन समय में इस स्थान पर कई दुर्ग थे इसी कारण इसका नाम मान्दारणगढ़ पड़ा। दामोदर नदी इसके बीच से बहती है और एक स्थान पर यह नदी ऐसी टेढ़ी होकर निकली है कि एक त्रिकोणसा बनगया है और आगे इस त्रिभुज के जहां नदी का मोड़ था एक बड़ा भारी दुर्ग बना था। नीचे से ऊपर तक एक रंग कृष्ण पत्थर की श्यामता दूरसे पर्वत की भ्रान्ति उत्पन्न करती थी और दोनों ओर इसके नदी की धारा और ही छबि दिखाती थी। काल पाकर ऊपर का भाग तो इसका गिरगया परन्तु नीह अभी पड़ा है और तदुपरस्थित वृक्षों के कुञ्ज में नाना प्रकार के जीवजन्तु बास करते हैं। नदी के उस पार भी अनेक गढ़ बने थे और उनमें एक कुलके कई धनाड्य और तेजस्वी पुरूष पृथक २ रहते थे। ऊर्ध्व लिखित हुर्ग के अतिरिक इस स्थान पर और किसी से मतलब नहीं है।

दिल्ली के महराज वालीन जब सेना लेकर बंग देश जीतने को आए थे उनके साथ एक जयधरसिंह नामी सैनिक भी आया था और जिस दिन महराज के जयपाई उस दिन इसने बड़ा साहस दिखलाया था। उक्त बालान ने प्रसन्न होकर यह मान्दारणगढ़ उसको पुरस्कार में दिया था क्रमशः इस बीर का वंश बहुत बढ़ा और काल पाकर बंगाधिपति को प्रचार के

इस स्थान पर गढ़ निर्माण पूर्वक स्वाधीन होकर रहने लगा। जिस गढ़ का सविस्तर वर्णन हुआ है उस में ९९८ के साल में बीरेन्द्रसिंह नामी जयधरसिंह का एक वंशज रहता था।

वीरेन्द्रसिंह दम्भ और अधीरता के कारण अपने पिता की आज्ञा नहीं मानता था और इसी कारण उनका आपुस में मेल नहीं था। पुत्र के विवाह के निमित्त पिता ने निकटस्थ एक अपने जाति वाले की कन्या ठहराई थी। बेटी वाले को और कोई सन्तान नहीं थी किन्तु कन्या परम सुन्दरी थी। बूढ़ेने इस सम्बन्ध को अति उत्तम समझा और यथोचित उद्योग करने लगा। किन्तु बीरेन्द्रसिंह के मन का यह विवाह नहीं था उसने अपनेही ग्राम की एक पति पुत्रहीन दरिद्र स्त्री के कन्या से छिपकर अपना विवाह कर लिया, पिता ने जब यह समाचार सुना बहुत रुष्ट हुआ और बीरेन्द्र को घर से निकाल दिया। उसने अपनी स्त्री को यहीं छोड़ दिया क्योंकि वह गर्भिणी थी और आप सिपाहियों में नौकरी करने की इच्छा कर वहां से चल दिया।

पुत्र के चले जाने से वृद्ध पिता को बड़ा क्लेश हुआ और उसके पता लगाने का यत्न करने लगा परन्तु क्या हो सकता था। तब उसने बहू को बुला कर अपने घर में रक्खा, समय पाकर उसको एक कन्या उत्पन्न हुई। थोड़े दिन के अनन्तर माता इस लड़की की मर गईं और वह अनाथ अपने दादा के यहां बड़ी हुई। वीरेन्द्रसिंह ने दिल्ली में जाकर राजपूतों की सेवा करली और अपने गुण करके थोड़े ही दिनों में 'पदवी' पाई कुछ दिन में खूब धन और यश संचय किया। इतने में पिता के मरने का समाचार मिला और नौकरी छोड़ कर घर चले आये। दिल्ली से उनके साथ बहुत से लोग आये थे, उनमें एक दासी और एक परमहंस भी थे। परिचारिका का नाम विमला और परमहंस का नाम अभिराम स्वामी था।

विमला को हमने परिचारिका करके लिखा है वही परिपाटी अभी चली जायगी, वह घर में गृहस्थी के कर्म और विशेष कर बीरेन्द्रसिंह की लड़की का लालन पालन किया करती थी इसके अतिरिक्त और कोई काम वह नही करती थी परन्तु, उसके लक्षण दासी के से न थे। जैसे गृहिणी का आदर होता है उसी प्रकार उसका भी होता था ओर सब लोग उस को मानते थे रूप भी उसका कुछ बुरा न था उस की ढलती हुई जवानी देख कर ज्ञात होता था कि अपने समय में वह एकही रही होगी। गजपति विद्या दिग्गज नामी अभिराम स्वामी का

एक शिष्य था यद्यपि उसको अलंकर शास्त्र का कुछ ज्ञान न था परन्तु रस अंग अंग से भरा था। उसने विमला को देखकर कहा परचारिका तो घड़े के घी की प्रकृति रखती है ज्यों ज्यों कामाग्नि कम होती है त्यों २ शरीर उसका पुष्ट होता जाता है।'

जिस दिन गजपति विद्या दिग्गज ने यह बोली बोली उसी दिन से विमला ने उनका नाम 'रसिकदास स्वामी, रक्खा।

विमला विधवा थी कि सधवा यह कोई नहीं जानता था पर आचरण उसके सब सधवा के थे। दुर्गेशनन्दिनी विलोत्तमा का जैसा स्नेह था वह मन्दिर में प्रकाश हो चुका है, तिलोत्तमा भी उसको वैसाही चाहती थी। बीरेन्द्रसिंह के दूसरे साथी अभिराम स्वामी सर्वदा दुर्ग में नहीं रहते थे कभी २ बाहर भी चले जाते थे, उनकी बहुदर्शिता और बुद्धिमानी में कुछ सन्देह नहीं, संसारिक विषयों को त्याग अहर्निश नेम धर्म में लगे रहते थे और राग क्षोभ का भी उन्होंने त्यागन कर दिया था। बीरेन्द्रसिंह ने इनको अपना दीक्षा गुरु बना रक्खा था।

इन दोनों के अतिरिक्त आसमानी नाम की एक और परिचारिका बीरेन्द्रसिंह के साथ आई थी॥

पांचवां परिच्छेद : अभिराम स्वामी का मंत्र

तिलोत्तमा और विमला दोनों मन्दिर से चलकर कुशल पूर्वक अपने घर पहुंच गईं। तीन चार दिन के अनन्तर एक दिवस बीरेन्द्रसिंह अपने 'दीवानखाने' में मसनद पर बैठे थे कि अभिराम स्वामी वहां आन पहुंचे, बीरेन्द्रसिंह ने उठकर स्वामीजी को दण्डवत किया और बैठने के निमित्त एक कुशासन बिछा दिया और आज्ञा पाकर आप भी बैठ गए । अभिराम स्वामी बोले ।

बीरेन्द्र ! आज मैं तुमसे कुछ कहा चाहता हूँ ।

बीरेन्द्रसिंह ने कहा आज्ञा-महाराज ?

अ० | आजकल मोगल पठानों में बड़ा युद्ध हो रहा है।

वी० | हां कोई भारी आपत्ति आवेगी।

अ० | आवेगी! क्या कहते हो? यह कहो कि अब क्या करना होगा?

वी० | (दम्भ पूर्वक) शत्रु आवेगा तो उस का नाश करूंगा और क्या करूंगा।

परमहंस ने मधुर स्वर से कहा, बीरेन्द्र! तुमसे वीरों के यही काम हैं किन्तु केवल कथन मात्र से जय न होगी, कुछ कर्तव्य भी चाहिये तुम्हारी वीरता में कुछ सन्देह नहीं परंतु तुम्हारे पास सेना नहीं है, मोगल पठान दोनों सेना बल में तुमसे श्रेष्ठ हैं बिना एक की सहायता दूसरे पर जय पाना सहज नहीं है, तुम हमारी बातों से अप्रसन्न न होना सोचो और मनमें विचारों और एक बात यह है कि दोनों से शत्रुता करही के क्या करोगे? पहिले तो शत्रुता अच्छी नहीं और यदि ऐसाही आनपड़े तो दो शत्रु से एक अच्छा है। हमारी बातों को भलीभांति विचार करके देखो।

बीरेंद्रसिंह कुछ काल पर्य्यन्त चुप रहे फिर बोले कि आप किधर की संधि चाहते हैं?

स्वामीजी ने कहा 'यतोधर्म्मस्ततोजय:' जिधर जाने में अधर्म्म न हो वही पक्ष लेना चाहिये, राज का द्रोही होना महां पाप है अतएव राजपक्ष प्रहण करो।

बीरेन्द्र ने थोड़ा सोचकर कहा कि राजा कौन है? मोगल पठान दोनों में राजत्व का विवाद है?

अभिराम स्वामी ने उत्तर दिया 'जो कर ले वही राजा'

बी० | अकबरशाह?

अ० | और क्या?

इस बातको सुनकर बीरेन्द्रसिंह को गुस्सा आगया और आंखें लाल होगईं। अभिराम स्वामी ने उनकी चेष्टा देखकर कहा, बीरेन्द्र! गुस्सा न करो हम तुमको दिल्ली के महाराज के पक्षपाती होने को कहते हैं कुछ मानसिंह का अनुगामी होना नहीं कहते।

बीरेन्द्रसिंह ने दहिना हाथ फैलाकर परमहंस को दिखाया और बायें हाथ की उंगली से शपथ कर कहा 'आपके चरण के प्रभाव से इसी हाथसे मानसिंह का नाश करूंगा'

अभिराम स्वामी ने कहा ज़रा शान्त हो क्रोध बस हो कर अपना काम बिगाड़ना न चाहिये मानसिंह को उसके अपराधों का दण्ड देना उचित है पर अकबरशाह से लड़ने में क्या लाभ होगा?

बीरेन्द्र ने क्रोध से कहा कि अकबर के पक्षपाती होने से उसके सेनापति के आधीन होना होगा, उसकी सहायता करनी पड़ैगी और मानसिंह के अतिरिक्त और कौन सेनापति है? गुरु देव! जबतक देह में प्राण है तब तक तो यह कर्म्म बीरेन्द्रसिंह से न होगा।

यह सुनकर अभिराम स्वामी चुप हो रहे फिर कुछ कालान्तर में बोले 'क्या पठानों की सहायता करनी तुम्हारे मन में है?'

बीरेन्द्र ने उत्तर दिया 'पक्षापक्ष के भेद से क्या लाभ होगा?' अभिराम स्वामी लम्बी सांस लेकर फिर चुप रहे और आंखों में आंसू भर लाये। बीरेन्द्रसिंह ने उनकी यह दशा देख कहा 'गुरूजी क्षमा कीजिये'। मैने बिना जाने यदि कोई अपराध किया हो तो बताइये।

स्वामीजी ने कपड़े से आंसू पोछकर कहा 'सुनो' मे कई दिन से ज्योतिष का हिसाब लगाता था, और विशेष करके तुम्हारी लड़की का फल बिचार रहा था क्योंकि तुम जानते हो कि मैं तुमसे उसपर अधिक तर स्नेह रखता हूं। वीरेन्द्र का मुंह सूख गया और उन्होंने आग्रह से कहा कि 'ज्योतिष में क्या निकला' परमहंस ने उत्तर दिया "मोगल सेनापति कर्तृक तिलोत्तमा को बड़ा क्लेश होगा।" बीरेन्द्रसिंह के मुख पर श्यामता आगई।

परमहंस ने फिर कहा कि मोगलों से विरोध करने में यह अमंगल होगा मेल करने से न होगा इसी लिये मैं तुमको उनका पक्षपाती होने को कहता हूं। कुछ तुमको खिझाने की मुझको लालसा नहीं है। मनुष्य का करना सब निषफल है। विधाता ने जो लिख दिया है वह अवश्य होगा नहीं तो तुम्हारी बुद्धि ऐसी न होती। बीरेन्द्रसिंह सन्नाटे में आगए। अभिराम स्वामी ने कहा वीरेन्द्र! द्वार पर कतलूखां का दूत खड़ा है। मैं उसे देखकर तुम्हारे पास आया था। मैंने उसे रोक दिया था इस कारण द्वारपाल ने अभी तक उसको आने नहीं दिया

अब मेरी बातैं चुक गईं उसको बुलवा भेजिये बीरेन्द्रसिंह ने दीर्घ श्वास लेकर सिर उठाकर कहा "हे गुरूदेव जबतक मैंने तिलोत्तमा को देखा नहीं था उसे अपनी लड़की नहीं समझता था अब मुझको संसार में उससे प्रिय और कोई वस्तु नहीं है मैंने आपकी आज्ञा मानी और अपने पूर्व संकल्प को त्याग किया। मानासिंह का अनुगामी हूंगा आप द्वारस्थित दूत को बुलवा भेजिये।”

आज्ञा होते ही द्वारपाल ने दूत को लाकर उपस्थित किया। उसने आते ही कतलूखां का पत्र निकालकर बीरेन्द्रसिंह को दिया जिसका आशय यह था कि एक सहस्त्र सवार और पांच सहस्त्र 'अशरफी' तुरन्त भेज दो नही तो बीस 'हजार' सेना भेजकर मान्दारणगढ़ घेर लूंगा।

पत्र पढ़कर बीरेन्द्रसिंह ने कहा "दूत!" तुम जाकर अपने स्वामी से कह दो कि सेना भेज दो मैं देख लूगा और वह सिर नीचा करके चला गया।

विमला यह सब बातें भीतर से सुन रही थी॥

छठवां परिच्छेद : असावधानता

गढ़ के अग्रभाग में जिसके नीचे से दामोदर नदी बेग पूर्वक बहती थी तिलोत्तमा एक बंगले में बैठी जल का प्रवाह देख रही थी सायंकाल हो गया और पश्चिम ओर सूर्य्य अस्त होने लगे हेमवरणगन सम्मिलित नीलाम्बर का प्रतिबिम्ब बहते हुए जल में थरथराता था और उस पार की ऊंची २ अटारी और लम्बे लम्बे वृक्ष बिमल आकाश में चित्र के समान देख पड़ते थे, दुर्ग में मोर और हंस सारस आदि कोलाहल कर रहे थे और कहीं २ रात्रिकाल उपस्थित जान पक्षिगण बसेरों में चुहचुहाते थे और काननागत सुगन्धमय मंद वायु जल स्पर्श पूर्वक शरीर को छू कर शीतल करता था, उसके बेग से केश और अंचल के उड़ने की कुछ और ही शोभा थी।

तिलोत्तमा के रूप राशि के बर्णन में लेखनी थरथराती है और उपनाम भी लज्जायुक्त होकर इधर उधर मुंह चुराते फिरते हैं। सच है किशोर अवस्था में ऐसी स्थिरता और कोमलता संयुक्त लावण्य की उपमा को कौन तुल सकता है? एक बार देखने से जिसकी मधुर मूर्ति सदा चित्त पर चढ़ी रहती है और बालक युवा और वृद्ध सब को चलते फिरते जागते और

सोते हर पल में एक रस प्रेम उपजाती है ऐसी अनुपम मन मोहिनी की असीम सुन्दरता का बखान करके कौन अपयश ले?

यदि किसी प्रकार नयन पथ द्वारा इस अपार शोभा राशि की झलक ध्यान में आजाय तो सन्ध्या समीर सञ्चिलित बसन्त लता की भांति मन सदा चलायमान रहे। यद्यपि उस की वय सोलह वर्ष की हो चुकी थी परन्तु इधर स्त्रियों की तरह उसके 'हाथ पैर' पुष्ठ नहीं हुए थे अभी वह बालिका ही बोध होती थी। मन्दवारिप्रवाह स्वभाव प्रकाशक काले घूंघरवाले केश दोनों पार्श्वों में सुन्दर प्रशस्त ललाट के ऊपर होकर कपोल गण्ड और पेटी पर्यन्त लटके हुए चित्र काव्य की निन्दा करते थे बड़े २ स्वच्छ कुटिलता रहित स्पष्ट और सरल नेत्र सर्वत्र सर्व्वकाल एक रस रहते थे परन्तु चाहने वालों के चित्त को देखतेही पलकपाश संकोच द्वारा फंसा लेते थे। सुडौल कीरवत नासा और कोमल रक्तबर्ण अधर सधर की जोड़ी गोल २ लोल कपोलों के बीच में अपूर्व छबि दिखलाती थी। और यदि एक बार मन्द मुसकान की प्रभा उन पर छा जाय फिर तो बड़े २ योगी मुनि और सिद्ध तपस्वियों के ध्यान छूट जाते थे। सुगढ़ित अस्थूल और कोमल शरीर की शोभा लिखते नहीं बनती। बांह में हीरा मणि के बाजूबन्द, नरम कलाई में मारवाडी चूड़ी उङ्गलियों में अँगूठी और छल्ले और गले में मेखला मोहनमाला और नौ नगे का हार और भी विशेष प्यारा मालूम होता था।

ऐसी रूपवती कामिनी अकेले बङ्गले में बैठी क्या करती है? क्या सायंकाल के आकाश की शोभा देखती है? पर आखें तो उसकी नीचे को देखती हैं। क्या नदी तीर के सुगन्ध वायु का रस लेरही है? किन्तु माथे में स्वेद के कण क्यों है? और वायुतो उसके चन्द्रानन के एक ही भाग में लगती है, क्या गौओं के चरने की शोभा देखती है। परन्तु वे तो धीरे२ घर चली जाती हैं। क्या पक्षी कलरव सुनती है? लेकिन उसका मुंह उदास है। वह कुछ देखती भालती नहीं है किन्तु किसी बात की चिन्ता कर रही है।

ऐसी कौन चिन्ता उसके जी में समाई है? अभी तो वह बालिका है, जान पड़ता है कि कुटिल कामदेव ने आज इसको पहिले पहिल अपना शिष्य किया है।

दासी ने दिया जला दिया और तिलोत्तमा एक पुस्तक लेकर दीप के समीप बैठी। अभिराम स्वामी ने उसको संस्कृत पढ़ाया था पहिले उसने कादम्बरी उठाई और थोड़ी सी पढ़कर धरदी और फिर सोचने लगी। एक पुस्तक और उठा लाई उसको भी थोड़ी पढ़कर फेंक दी अबकी गीत गोबिन्द लाई थोड़ी देर तो मन लगाकर पढ़ती रही जब 'मुखरमधीरं त्यज: मञ्जीरं रिपुमित्रकेलिष लोलम' चरण आया तो लज्जायुत मुस्किरा कर पुस्तक को बंद करके धर दिया और चुपचाप शय्या पर बैठ रही। पासही लेखनी और मसिदानी धरी थी पट्‌टी पर 'ए' 'उ' 'ता' 'क' 'स' 'म' घर द्‌वार वृक्ष मनुष्य इत्यादि लिखने लगी और एक ओर की पट्‌टी भर गई, जब कहीं स्थान न रहा तो फिर सोचने लगी और अपने करनी पर हंसी और उस लेख को पढ़ने लगी 'वासवदत्ता' 'के' 'ई' 'इ' 'य' 'एक' 'वृक्ष' शिव 'गीतगोबिन्द' विमला, लता, पता, हिजि, बिज, गढ़, सबनाथ और क्या लिखा था ?

'कुमार जगतसिंह'

यह नाम पढ़कर लज्जा के मारे तिलोत्तमा का मुंह लाल हो गया। फिर अपने मन में सोचा कि घर में कौन है जो लज्जा करैं और दो तीन चार बेर उस नाम को धोखा और चोरों की भांति द्‌वार की ओर देखती थी और फिर २ उस नाम को पढ़ती थी।

जब कुछ काल बीत गया तो मन में डरी कि कोई देख न ले और शीघ्र पानी लाकर सब को धो डाला किन्तु सन्तोष नहीं हुआ और एक कपड़े से पोंछ डाला फिर पढ़ कर देखा कि कहीं मसी का लेश तो नहीं रह गया। अभी चित्त की स्थिरता नहीं हुई और फिर पानी लाकर सब को धोया और वस्त्र से पोंछा तथापि भ्रान्ति बनी रही।

सातवां परिच्छेद : बिमला का मंत्र

अभिराम स्वामी अपनी कुटी में कुशासन पर बैठे थे और विमला ने खड़े २ अपना तिलोत्तमा और जगतसिंह का मन्दिर सम्बन्धी संपूर्ण समचार कह सुनाया और कहा कि आज चौदह दिन हो चुका कल पूरा पन्द्रह हो जायेगा। अभिराम स्वामी से पूछा फिर क्या इच्छा है?

बिमला ने कहा मैं तो यही पूछने को तुम्हारे पास आई हूं कि अब क्या करना उचित है।

स्वामी ने कहा कि यदि हमसे पूछती हो तो अब इस विषय को चित्त से भुलादो।

बिमला का मन उदास होगया तब अभिराम स्वामी ने पूछा 'क्यों कैसी उदास होगई?

बिमला ने कहा कि तिलोत्तमा की क्या दशा होगी!

अभिराम स्वामी ने आश्चर्य से पूछा 'क्यों, क्या तिलोत्तमा को विशेष प्रेम है?'

बिमला चुप रही और फिर बोली "मैं तुमसे क्या कहूं मैं आज चौदह दिन से उसको बिलक्षणगति देखती हूं, मुझको तो जान पड़ता है कि तिलोत्तमा दशा चित्त से आसक्त है।

परमहंस ने मुस्किरा कर कहा स्त्रियों को ऐसाही जान पड़ता है। हे बिमला! तू बहुत चिन्ता न कर अभी तिलोत्तमा लड़की है नये मनुष्य को देखने से कुछ प्रेम होही जाता है उस बात की चर्चा उड़ा दो वह आप भूल जायगी।

बिमला ने कहा 'नहीं महराज ऐसे लक्षण नहीं है। पन्द्रह दिन में उसका स्वभाव पलट गया। वह अब हमसे क्या और स्त्रियों से पूर्ववत हंसती बोलती नहीं, किसी से बात भी नहीं करती। पुस्तकैं उसकी सब पर्यक के नीचे पड़ी है, पौधे उसके पानी बिना सुखे जाते हैं पक्षियों की ओर अब उसकी रुचि नहीं है। खाना पीना सब छूट गया है रात को नींद नहीं आती भूषन बसन अच्छा नहीं लगता, रात दिन सोच में रहती है और चेहरे पर श्यामता आगई है।

अभिराम स्वामी सुनकर चुप रहे। थोड़ी देर के अनन्तर बोले "मैं जानता था कि देखते ही गहिरी प्रीत नहीं होती पर स्त्री चरित्र और विशेषतः बालिका चरित्र का मर्म्म ईश्वर ही जानता है। अब क्या करना उचित है? बीरेन्द्र तो इस सम्बन्ध को कदापि स्वीकार न करैगा बिमला ने कहा "इसी सोच में मैंने अभी तक इसका प्रकाश नहीं किया, मन्दिर में बीरेन्द्रसिंह को भी मैने कुछ पता नहीं दिया, किन्तु यदि 'सिंहजी' यह शब्द कहते समय बिमला के मुंह का रंग बदल गया, यदि "सिंहजी" मानसिंह से मित्रता करलें तो फिर जगतसिंह को जमाई बनाने में क्या हानि है?"

अ०। मानसिंह क्यों मानेगा?

बि०। न माने तो नहीं सही।

अ०। तो क्या जगतसिंह बिरेन्द्रसिंह की कन्या को स्वीकार करेगा?

बि०। जाति में तो किसी के दोष हैई नहीं, जयधरसिंह के पुर्खे भी तो यदुवंशी थे।

अ०। यदुवंशी की कन्या मुसल्मान के दोगले पुत्र की बहू होगी?

विमला ने स्वामी की ओर घूर कर कहा 'क्यों न होगी क्या यदुवंशी कुल नीच है?'

यह बात सुनकर परमहंस की आंखें क्रोध से लाल होगई और बोले 'पापिन! तू न मानैगी? दूर हो यहां से'॥

आठवां परिच्छेद : कुलतिलक

जगतसिंह सेना लेकर अपने पितासे विदा हुए और विशेष बीरता प्रकाश पूर्वक पठानों में हलचल मचा दिया! उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि पांच सहस्त्र सेना से कतलूखां के पचास सहस्त्र सेना को सुवर्णरेखा पार उतार दूंगा। यद्यपि अभी तक कार्य्य सिद्ध नहीं हुआ था परन्तु उनके कर्तव्य की श्लाघा सुनकर मानसिंह ने समझा कि जगतसिंह द्वारा प्राचीन राजपूत गौरव पुनः प्रसिद्ध होगा।

जगतसिंह भलीभांति जानते थे कि पांच सहस्त्र सेना से पचास सहस्त्र सेना परास्त करना संपूर्ण भाव से असंभव है बरन प्राण बचना कठिन है। अतएव उन्होने ऐसी प्रणाली स्थापित की कि जिसमें संमुख संग्राम न करना पड़ै और अपनी सेना को सर्वदा छिपाये रहते थे। कधी सघन जङ्गल, कधी घाटी और कधी पहाड़ों की खोहों में रहते जिसमें किसी प्रकार किसी को उनका स्थान न मालूम हो और जहां कहीं सुन पाते कि पठानों की सेना अमुक स्थान पर है तुरन्त छापा मार कर उनका नाश करते थे। और बहुतेरे भेदिये कुंजड़े, कसाई, भिक्षुक, उदासी, और ब्राह्मण का भेष बनाये फिरा करते थे और पठानों की सेना का शोध लिया करते थे और पहिले से जाकर मार्ग में छिपे रहते थे जहां किसी पठान सेना को आते देखा वहीं निकल कर मार कूट के सब छीन लेते थे। इस प्रकार जब अनेक पठान सेना मारी

गई तब तो वे बहुत व्याकुल हुए और राजपूतों से संमुख संग्राम करने की टोह में फिरने लगे परन्तु जगतसिंह का पता काहे को लगता था।

जगतसिंह अपनी पांचो सहस्त्र सेना को एकत्र नहीं रखते थे कहीं सौ कहीं दो सौ इस प्रकार उनको भिन्न २ स्थानों में ठहरा दिया था और सर्वदा एक स्थान में भी नहीं रहते थे, मारा कूटा और चल दिया। कतलूखां के पास नित्य यही सम्वाद आता था कि आज चार सौ मरे कल हज़ार मरे, अर्थात सोते बैठते सर्व काल में अमङ्गल समाचार मिलता था। अन्त को लूट पाट सब बन्द हो गई और सेना सब दुर्ग में जा छिपी, आहारादि की भी कठिनता होने लगी। इस उत्तम शासन सम्वाद को सुनकर महाराज मानसिंह ने पुत्र को यह पत्र लिखा।

"कुल तिलक! मैंने जाना कि तू पठान वंश को निर्मूल करेगा अतएव यह दश सहस्र सेना और तुम्हारी सहायता के निमित्त भेजता हूं।"

कुमार ने उत्तर लिखा।

"महाराज यदि आपने और सेना भेजी तो अति उत्तम है नहीं तो आपके चरणों के प्रभाव से इसी पांच सहस्र सेना से मैं अपनी प्रतिज्ञा पालन करता" और सेना लेकर अपूर्व वीरता प्रकाश करने लगे।

अब देखना चाहिये कि शैलेश्वर के मन्दिर में जिस सुन्दरी से साक्षात हुआ था उसका ध्यान जगतसिंह को कुछ रहा या नहीं।

जिस दिन अभिराम स्वामी ने क्रोध करके बिमला को घर से निकाल दिया उसके दूसरे दिन संध्या को वह बैठी अपनी कोठरी में 'कंघी चोटी' कर रही थी। तीस बर्ष की बुढ़िया भी श्रृंगार करती है! क्यों नहीं, मन तो नहीं बूढ़ा होता और विशेषकर के रूपवती तो सर्वदा जवानही रहती हैं। हां कुरूपाके जवानी और बुढ़ापे में भेद होता है। बिमला तो रूप और रस दोनों से भरी पूरी थी वरन पुराना चावल और भी अच्छी तरह खिलता है। उसके लाल २ ओठों को देख कर कौन कहता कि बुढ़िया है, काजल लगे हुए मारू नयनों के कटाक्ष अपने सामने तरुणियों को क्या समझते थे। गोरे २ बदन पर नागिन सी लटैं गालों पर लटकती हुई कैसी भली मालूम होती थी। देखो! बायें हाथ से बालों को पकड़ कर कंघी करती हुइ मूर्ति को

दर्पण में देखती और मुसकिराती और धीरे २ रस राग गाती हुई बिमला शांतीपुर की झीनी साड़ी के अंचल से घुटने के बीच में छातियों को छिपाये हुए कामारि के मन में भी काम उपजाती है।

जूड़े को बांध बेणी पीठ पर लटका दी और एक इतर सुगन्धमय रूमाल से मुंह को पोंछ महोवे की बीड़ी खाय ओठों पर धड़ी जमाय मुक्तामय कंचुकी कस और अंग २ सिजिल कर गुच्छेदार गुरगावी पैर में पहिन गले में वही युवराजदत्त माला धारण किये हुए बिमला तिलोत्तमा के घर चली।

तिलोत्तमा इस रूप को देख कर चकित हो हंस के बोली।

क्यों! आज तो बड़ा मोहनी रूप बनाया है।

बिमला ने कहा 'तुमको क्या?'

ति० भला बता तो आज किसका घर घालेगी?

बि०। मैं कुछ करूंगी तुझको क्या?

तिलोत्तमा ऐसा उत्तर पाय लज्जा से उदास हो गई। तब बिमला ने हंस कर कहा मैं बड़ी दूर जाऊंगी।

तिलोत्तमा फिर प्रफुल्ल बदन हो गयी और पूछने लगी कि कहां जायगी।

बिमला मुंह पर हाथ रख कर हंसने लगी और बोली अनुमान करो कि मैं कहां जाऊंगी और तिलोत्तमा उसका मुंह देखने लगी तब बिमला ने उसका हाथ पकड़ लिया और 'सुनो' कह खिड़की के समीप ले गई और धीरे से कान में बोली "शैलेश्वर के मन्दिर में जाऊंगी वहां एक राजपूत्र से भेंट करनी है।

तिलोत्तमा के शरीर पर रोमांच हो आया और वह चुप रही।

बिमला फिर बोली कि अभिराम स्वामी से हमसे बात हुई थी और उन्हीं ने कहा कि जगतसिंह के सङ्ग तिलोत्तमा का संयोग हो नहीं सकता, तुम्हारा बाप न मानेगा। उनसे इसकी चरचा चला कर बिना लात खाये बच जांय तो बड़ी भाग।

तिलोत्तमा के चेहरे का रंग उतर गया और मुंह लटका कर बोली 'फिर क्या होगा?'

वि० । क्यों? मैं राजपुत्र को बचन दे आई हूं, आज रात को उनसे मिलकर सब समाचार कहूंगी। अब कुछ चिन्ता नहीं है, देखें वे फिर क्या करते हैं। यदि उनको तेरा प्रेम होगा तो-इतने में तिलोत्तमा ने कपड़े से उसका मुंह बंद कर दिया और कहने लगी "तेरी बातों के सुनने से मुझको लज्जा होती है, तेरे जहां जी में आवे तहां जा न मेरी बात और किसी से कहना न और किसी की बात मुझसे कहना"।

बिमला हंस कर बोली "फिर क्यों इतना भाव करती हो?"

तिलोत्तमा ने कहा तू जा यहां से? अब मैं तेरी बात न सुनूंगी।

वि० । तब मैं मन्दिर में न जाउं—!

ति० । मैं क्या तुझको कहीं जाने को मना करती हूं जहां जी चाहे जा न।

बिमला हंसने लगी और बोली कि तब मैं मन्दिर में न जाऊंगी।

तिलोत्तमा ने सिर झुका के कहा—जा।

बिमला फिर हंसने लगी और कुछ कालान्तर में बोली अच्छा तो मैं जाती हूं और जब तक मैं न आऊं सो न जाना?'

तिलोत्तमा ने मुस्किरा के अपनी सम्मति प्रकाश की।

जाते समय बिमला ने एक हाथ तिलोत्तमा के कन्धे पर धर दूसरे से उसकी दाढ़ी चूम ली और उसके बिदा होते तिलोत्तमा के आँखों से आंसू टपक पड़े।

द्वार पर आसमानी ने आकर विमला से कहा—सर्कार तुझको बुलाते हैं।

तिलोत्तमा ने सुन कर चुपके से आकर "यह श्रृंगार उतार के जाना"। कहा

बिमला बोली "कुछ भय नही है" और विरेन्द्रसिंह के बैठक में चली गई। सिंह जी सैन कर रहे थे और एक दासी पैर दाबती थी और दूसरी पंखा झलती थी। पलंग के पास खड़ी होकर बिमला ने पूछा "महाराज की क्या आज्ञा है?"

बीरेन्द्रसिंह ने सिर उठा कर देखा और चकित हो कर कहा "विमला! आज तू सज के कहां निकली?"

विमला ने कुछ उत्तर न दिया और फिर पूछा कि 'मुझ को क्या आज्ञा होती है?'

बीरेन्द्र ने पूछा तिलोत्तमा कैसी है? अभी कुछ क्लेश सुनने में आया था, अबतो अच्छी है न?

वि०| आप की कृपा से अच्छी है।

बी०| अच्छा थोड़ी देर मुझको पंखा तो झल, आसमानी तू जा तिलोत्तमाको बुला ला और वह पंखा रखकर चली गई।

बिमला ने "इशारे से" आसमानी को द्वार पर ठहरने को कहा।

बीरेन्द्र ने दूसरे दासी से कहा "लक्षिमिन? तू मेरे लिये पान तो लगा ला" और वह भी चली गई।

बी०| बिमला सच बता आज तूने श्रृंगार क्यों किया है।

बि०| कुछ काम है।

बी०| क्या काम है बता न?

बि०| अच्छा सुनिए, और कामोद्दीपक कटाक्ष से वीरेन्द्र की ओर देखने लगी और बोली "मैं अपने यार के पास जाती हूं" और तुरन्त वहां से चल खड़ी हुई।

नौवां परिच्छेद : आसमानी दूती

बिमला के संकेत के अनुसार आसमानी द्वार पर खड़ी थी। बिमला ने आकर उस्से कहा आज तुझ से एक बात कहनी है। आसमानी ने कहा कि मैं तेरा वेश देख कर पहिलेही समझ गई थी आज कुछ है।

बिमला ने कहा "मुझको आज एक काम के लिये जाना है और अकेली रात में जा न सकूंगी अतएव तुझको संग ले चलूगीं।"

आसमानी ने पूछा "कहां?"

बिमला बोली तूंने तो पहिले इतनी बातें नहीं पूछीं थी।

आसमानी ने लजा कर कहा अच्छा तूं यहीं ठहर मैं थोड़ा काम कर के आती हूं।

बिमला ने कहा एक बात और है, तुझको कोई पहिचानता तो नहीं?

आसमानी ने पूछा, कौन?

बिमला ने कहा जैसे कुमार जगतसिंह से भेंट हो जाय तो वे तुझको पहिचान लेंगे।

आसमानी कुछ देर तक चुप रही और फिर गद गद स्वर से बोली "ऐसा कौन दिन होगा?"

बिमला ने कहा यदि हो तो?

आसमानी ने कहा 'कुमार न चीन्हेंगे तो कौन चीन्हेगा?'

बिमला बोली 'तब मैं तुझको न ले चलूंगी और किसी को ले जाऊंगी क्योंकि अकेले तो जाऊंगी नहीं।

आसमानी ने कहा कि कुमार के देखने को बहुत जी चाहता है।

बिमला बोली फिर मैं क्या करूं, और सोचने लगी। और आसमानी मुंह पर कपड़ा लगाकर हंसने लगी।

बिमला ने भौंह चढ़ा कर कहा 'चल, वाह! अपने आप हंसती है।

आसमानी ने कहा मैं सोचती हूं कि चांद दिग्गज को तेरे संग करदूं तो अच्छा होय।

बिमला ने कहा "हां यह बात ठीक है, रसिक दासही को संग ले जाऊंगी।,,

आसमानी ने कहा "और मैं क्या हंसी करती थी?"

बिमला ने कहा "हंसी नहीं,मैं उस ब्राह्मण को पतियाती हूं और वह तो पोंगा हुई है—किन्तु वह जाय या न जाय!,, आसमानी ने हंसकर कहा वह मेरा काम है, मैं उसको अभी लिये आती हूं तब तक तू फाटकके बाहर खड़ी रह और हंसते हंसते दुर्ग के एक कुटी की ओर चली।

अभिराम स्वामी के शिष्य गजपति विद्या दिग्गज इसीमें रहते थे। इनका डोल साढ़े पांच हाथ का था, छाती हाथ भर की चौड़ी, लम्बी२ टागें, कुवड़ी पीठ और लम्बी नाके एक अद्भुत स्वरूप दिखलाती थी। माथे के बाल कुल श्वेत हो गए थे बरन टूट२ झरते भी जाते थे और वही मसल थी कि 'सौंच के पानी नाहीं नाम दयीवसिंह।' नाम तो इनका विद्या दिग्गज था परन्तु पढ़े लिखे कुछ ऐसेही थे बाल्य अवस्थामें तो व्याकर्ण प्रारम्भ किया था और साढ़े सात महीने 'महर्णोर्घ' लक्षण शुद्धता पूर्वक नहीं आया। भट्ठाचार्य्य महाशय के अनुग्रह से विद्यार्थियों में बैठ कर पन्द्रह वर्ष में शब्दकाण्ड समाप्त किया जब दूसरा काण्ड आरम्भ होने का समय आया तो गुरूजी ने कहा कि देखैं इसको कुछ आया कि नहीं और परीक्षा लेने बैठे। पूछा कि राम शब्द के परे अम होने से क्या रूप होगा। शिष्य ने देर तक सोच के कहा 'रामम्भा।' गुरू ने कहा "बेटा अब तू पण्डित हो गया अब अपने घर जा मैं तुझको नहीं पढ़ा सकता है।"

गजपति ने अहंकार पूर्वक कहा यदि मै पण्डित हो गया तो मुझको कोइ उपाधि मिलना चाहिये।

गुरु बोले हां ठीक है, अच्छा मैंने तुमको विद्या दिग्गज का पद दिया। दिग्गज ने प्रसन्न होकर गुरु का चरण छू कर प्रणाम किया और घर की राह ली।

घर में आकर दिग्गज पण्डित ने विचारा कि व्याकरण तो मैं पढ़ चुका अब कुछ स्मृति पाठ करना चाहिये और सुनते हैं कि अभिराम स्वामी बडे पंडित हैं उनके व्यतिरिक्त और कोई हमको भलीभांति पढ़ा न सकेगा, इससे उनके पास चलना अवश्य है और तदनुसार दुर्ग में पहुंचे। अभिराम स्वामी बहुतों को पढ़ाते थे पर किसी के ऊपर विशेष स्नेह नहीं करते थे। दिग्गज भी उनही में मिल गए।

दिग्गज अपने मन में जानते थे कि मैं केवल लीला करने को उत्पन्न हुआ हूं, और इस मेरे वृन्दावन में ईश्वर ने आसमानी को गौ रूपी बनाया है। आसमानी का भी जी बहुत लगता था और कधी २ बिमला भी आकर इस कौतुक की भागी होती थी।

"आज तो मेरी राधा आती है" "वाह विधाता आज तो तू ने दया की।"

दसवां परिच्छेद : आसमानी का प्रवेश

विद्या दिग्गज की मनमोहनी आसमानी के रूप देखने की इच्छा पाठकों के मन में अवश्य होगी परन्तु उसका वर्णन बिना सरस्वती की सहायता नहीं हो सकता अतएव देवी का आवाहन करता हूं।

हे वागदेवी! हे कमलासनि! हे शरदेन्दु आनन धारिणी! हे अमलकमलवत् भक्तवत्सल चरन! हे आज मैं तुम्हारीही शरण चाहता हूं। आसमानी के रूप वर्णन में मेरी सहायता करो हे महेश मुख चन्द्र चकोरी! हे जगदंब! दया पूर्व्वक साहस प्रदान करो मैं रूप वर्णन की इच्छा करता हूं। हे विद्याप्रदायनि! हे अधम उधारणि! हे अविद्या तिमिरनाशकारिणि! मेरे हृदय के मतिमन्दता रूपी अन्धकार का नाश करो। हे माता! तेरे दो स्वरूप हैं, जिस रूप से तूने काली,दास को बर देकर रघुवंश , कुमार सम्भव, मेघदूत और शकुन्तला की रचना कराई, जिस बर के प्रभाव से बाल्मीकि ने रामायण, भवभूति ने मालती माधव, और भारवि ने किराताज्र्जुनीय बनाई वह रूप धारण करके मुझ को क्लेश न दे, जिस रूप के ध्यान से श्रीहर्ष ने नैषध बनाया, भारतचन्द्र ने विद्या का अपूर्व रूप वर्णन किया जिसके प्रसाद से

दाशरथी राम का प्रादुर्भाव हुआ और जो मूर्ति अद्य पर्यन्त बटतला में विराजमान है, उसी स्वरूप का टुक मुझको दर्शन दे, में आसमानी के रूप राशि का वृत्तान्त लिखूंगा।

आसमानी की वेणी नागिन की भांति पीठ पर लटकती थी उसको देख उर्गिणी मारे भय के बिल में समाय गई । बिधना ने देखा कि हमारी सृष्टि में विघ्न पड़ता है, सांपिन बिल में रहेगी तो मनुष्य को काटैगी कौन? और पोंछ पकड़ कर बाहर खींच लिया। फणिनी झुंझला कर सिर पटकने लगी यहां तक कि माथा चिपटा होगया, उसीको अब लोग फण कहते हैं। मुंह आसमानी का अत्यन्त सुंदर था। चन्द्रमा मारे लज्जा के छिप रहे और ब्रह्मा के पास फ़रियाद लेकर गए, ब्रह्मा ने उन को समझा कर फिर भेजा और कहा कि जाओ अब स्त्रियां घूंघट से मुंह छिपाये रहैंगी, किन्तु भय के मारे आज तक उनका कलेजा सूखकर काला हो रहा है। नयनों को देखकर खजानोंने बस्ती को रहना छोड़ जंगल की राहली, विधना डरीं कि ऐसा न हो कि ये भी उनके पीछे चले जाय, इस कारण दो पलक बना के पिंजड़े में बन्द रक्खा। नाक गरुड़की इतनी लम्बी थी कि आज तक पक्षिराज उसके भयसे उड़ते फिरते हैं। ओठों की लाली देख दाड़िम ने बंगदेश का रहना त्याग किया। हाथियों ने बड़ा श्रम किया कि आसमानी को चाल में परास्त करैं, पर असमर्थ हो ब्रह्मदेश को भागे, जूड़ा की ऊंचाई देख धवलागिरि के मन में बड़ा सोच हुआ और बहुत कसमकस किया पर क्या करैं डील से हैरान थे, अन्त को न रह गया और रोने लगे कि आज तक नदी प्रवाह द्वारा आंसू चले जाते हैं।

परन्तु निष्कलंक तो संसार में इश्वर ने अपने अतिरिक्त और किसी को रक्खाही नही। इस अनुपम सौन्दर्य्य के साथ एक फ़ी भी लगी थीं, आसमानी विधवा थी। उसने दिग्गज के कूटी में आकर देखा की द्वार बन्द है और भीतर दीप जल रहा है। पुकारा महाराज।

किसी ने उत्तर नहीं दिया। फिर कहा "पण्डित।"

अभी भी कोई नहीं बोला।

वाह भीतर क्या करता है? ओ रसिकदास स्वामी उत्तर नहीं आया।

आसमानी ने द्वार के छेद में से देखा कि ब्राह्मण बैठा भोजन करता है इसी कारण बोलता नही मन में कहा वस्तुतः यह बोलकर फिर नहीं खाता और फिर पुकारा अरे ओ रसिकदास।

किसी ने उतर न दिया।

ऐ रसराज?

भीतर से शब्द 'हुम'

आ०| बोलते क्यों नहीं, फिर खा लेना?

उत्तर आया हूं-ऊं-ऊम?

आसमानी मुंह पर कपड़ा देके खिलाखिला कर हंसी और बोली—यह लो यह बात नहीं है?

दि०| ठीक, ठीक, ठीक, तो फिर अब न खाऊंगा।

आ०| हां २ उठ कर मुझको कपाट खोलदे?

आसमानी ने छेद में से देखा कि दिग्गज ने बहुत सा भात छोड़ दिया और कहा।

'नहीं नहीं वह भात तो सब खा जाओ।

दि०| नहीं अब क्या खांऊ, अबतो बात कह दिया।

आ०| नहीं २, न खाओ तो हमको खाओ'।

दि०| राधे कृष्णा! बात कह कर कोई खाता है।

आ०| अच्छा तो मैं जाती हूं मुझको तुमसे एक बात कहनी थी, अब कुछ न कहूंगी, लो जाती हूं।

दि०| नहीं नहीं, आसमानी रूठो न, एलो मैं खाता हूं। और बैठ कर खाने लगा। जब दो तीन ग्रास खा चुका तब आसमानी ने कहा, चलो हुआ अब केवाड़ खोल दो।

दि०| इतना यह भी खा लूं।

आ०| अभी भण्डार नहीं भरा, उठो नहीं तो मैं कह दूंगी कि तूने बात कहके फिर खाया।

दि०| नहीं नहीं, ए देख मैं उठा और मुंह बिचका कर रहा सहा भात छोड़ कर कवाड़ खोल दिया।

ग्यारहवां परिच्छेद : आसमानी का प्रेम

आसमानी को भीतर आते देख दिग्गजने बड़े प्रेम से कहा आओ प्यारी।

आसमानी ने कहा, वाहरे—ठठोली करते हो?

दि०| नहीं तुमसे क्या ठठोली करैंगे।

आ०| इसी से तुम्हारा नाम रसिक दास है?

दि०| रसिकः कौपिको वास:। प्यारी तुम बैठो मैं हाथ धो आऊं।

आसमानी ने मन में कहा, हां हाथ क्यों न धोवोगे। हम अभी तुमको और खिलावेंगे कि? और कहा कि क्यों; हाथ क्यों धोते हो, सब भात खा न जाओ।

दिग्गज ने कहा "यह कहीं हो सकता है कि बात कहके और फिर भात खाय।"

आ०| और यह भात बचा जो है। क्या भूखे रहोगे।

दिग्गज ने मुंह बिगाड़ कर कहा, क्या करूं तूने खाने भी दिया? और आंखे काढ़ कर पत्तल की ओर देखने लगे।

आसमानी ने कहा "तौ तुमको खाना पड़ेगा।"

दि०| हरे कृष्ण? चौके से उठ आये, कुल्ला किया, अब क्या खायेंगे?

आ०| हां न खाओगे? हमतो अपना जूठा खिलावेंगे और थाली में से एक कवर भात लेकर खा गयी।

ब्राह्मण हक से रह गया।

आधा कवर थाली में डाल कर आसमानी ने कहा 'ले अब खाओ' ब्राह्मण के मुख से शब्द नहीं निकला।

आ०| खाओ सुनते हो कि नहीं, मैं यह न किसी से कहूंगी कि तुमने हमारा जूठा खाया है, कुछ हानि नहीं।

दि०| हां उसमें क्या है।

किन्तु दिग्गज की क्षुधाग्नि क्षण २ बढ़ती जाती थी और मन में कहते थे कि यह दुष्ट आसमानी पृथ्वी में समाय जाती तो मैं यह सब भात खा जाता और पेट की आग बुझाता।

आसमानी चेष्टा से दिग्गज के मनकी बात लख गई और बोली "खाओ न-भला थाली के पास तो बैठो।"

दि०| क्यों फिर क्या होगा।

आ०| हमारा मन। क्या हमारा कहना न करोगे।

दिग्गज ने कहा "अच्छा लेओ बैठता हूं, इसमें कुछ दोष नहीं हैं। तुम्हारी बात रह जायं" और थाली के पास बैठ गए। पेट तो भूख के मारे ऐंठा जाता था और आगे का अन्न मुंह तक नहीं पहुंच सकता था। दिग्गज के आँखों से आँसू चलने लगे।

आसमानी ने कहा "यदि ब्राह्मण शुद्र का जुठा छूले तो क्या हो!" पण्डित ने कहा "स्नान कर डालना चाहिये।"

आ०| अब मैं जान गई कि तुम मुझको कैसा चाहते हो लो अब मैं जाती हूं। हमारे आने में तुमको क्लेश होता है।

दिग्गज लम्बी नाक सिकोड़ और कंजी आंखों को तिरछी कर हँसकर कहा "यह कौन बात है। अभी नहा डालूंगा।"

आसमानी ने कहा "मैं चाहती हूं कि आज तुमारी थाली का जूठन खाऊं। एक कोर बनाकर देओ तो।"

दिग्गज ने कहा "कुछ चिन्ता नहीं नहा कर स्वच्छ हो जाऊंगा" और भात सान कर कौर बनाने लगे।

आसमानी बोली कि मैं एक कहानी कहती हूं सुनो और जब तक मेरी कहानी समाप्त न हो तबतक तुम भात सानों, यदि हाथ खींच लोगे तो मैं चली जाऊंगी।

दिग्गज ने कहा अच्छा।

आसमानी एक राजा और उसके दुयो शुयो दो रानियों की कहानी कहने लगी और दिग्गज उसके मुंह की ओर देख कर हुंकारी भरने लगे और हाथ से भात भी सानते जाते थे।

सुनते २ दिग्गज का मन बंट गया और आसमानी के हवा भाव में भूल गया, भात का सानना भी स्मरण न रहा, परन्तु पेट की आतें कुलकुला ही रही थीं।

इतने में धोखे से भात का कौर मुंह तक पहुंच गया और मुंह में दांत तो थाही नहीं चुगलाने लगे। गाल फूला देखकर आसमानी खिलखिला कर हंसने लगी और बोली "क्यों यह क्या होता है?"

दिग्गज के ज्ञान चक्षु खुल पड़े और झट पट एक कौर और मुंह में धर आसमानी का पैर पकड़ कर कहने लगे "मेरी प्यारी आसमानी, किसी से कहना मत तुमको हमारी सौगंध।"

बारहवां परिच्छेद : दिग्गज हरण

इसी औसर पर बिमला ने आकर बाहर से द्वार खटखटाया। द्वार का शब्द सुनतेही दिग्गज का मुंह सूख गया और आसमानी ने कहा क्या हुआ? बिमला आती है छिप रहो छिप रहो।

ब्राह्मण देवता झट उठ खड़े हुए और घबरा कर कहने लगे "कहां छिपूं?"

आसमानी ने कहा देखो उस कोने में बड़ा अंधेरा है एक काली हांड़ी सिर पर रख के वहीं छिप रहो, अंधेरे में कुछ जान न पड़ैगा। दिग्गज ने वैसाही किया और आसमानी के बुद्धि को सराहने लगे किन्तु दुर्भाग्य वश एक अरहर की दाल की हांडी हाथ आई, ज्योंही उस को माथे पर औंधाया कि सब दाल वह कर नाक मुंह और संपूर्ण शरीर पर फैल गई। इतने से विमला ने भीतर आकर दिग्गज की यह दशा देखी। दिग्गज उसको देखतेही उठ खड़े हुए बिमला के मनमें दया आई और कहने लगी कि "बैठे रहो महाराज बैठे रहो" यदि तुम यह सब दाल पोंछ के खा जाओ तौ भी हम किसीसे न कहैंगी।

ब्राह्मण के जी में जी आया और फिर खाने को बैठ गये। मनमें तो आया कि शरीर की दाल भी पोंछके खा जांय परन्तु बन न पड़ा। आसमानी के निमित्त जो भात साना था वह सब खा गए पर अरहर की दाल का मनमें सोंच बनाही रहा।

जब खा पी चुके आसमानी ने स्नान कराया और मन स्थिर हुआ तो विमला ने कहा "रसिकदास एक बात है।" रसिकदास ने पूछा, क्या बात है?

वि०| तुम हम लोगों को चाहते हो नहीं?

दि०| कैसा कुछ।

वि०| दोनों जनी को?

दि०| हां दोनों को।

वि०| जो हम कहैं सो करोगे?

दि०| हां।

वि०| अभी?

दि०| हां अभी।

वि०| इसी घड़ी?

दि०| इसी घड़ी।

वि०| हम लोग यहां क्यों आई हैं जानते हो।

दि०| नहीं।

आसमानी ने कहा 'आज हम तुम्हारे संग भाग चलेंगी।" दिग्गज मुंह देखने लगा और बोला हां!

"विमला ने हंसी रोक के कहा बोलते क्यों नहीं?"

आं आं आं आं, तो तो तो कह कर दिग्गज रह गया किन्तु मुंह से शब्द नहीं निकला।

विमला ने कहा "तो क्या तुम न चलोगे"

आं आं आं तो अच्छा स्वामी से पूछ आऊं।

बि०| स्वामी से क्या पूछोगे? क्या गवना ब्याह है जो उनसे साइत पूछोगे?

दि०| अच्छा तो न जाऊंगा। तो कब चलना होगा?

बि०| कब? अभी देखते नहीं कि मैं सब ले देके आई हूं।

दि०| अभी?

वि०| नहीं तो कब? जो तुम न चलो तो हम किसी और को ढूढ़ें।

गजपति को फिर और कुछ न सूझी और बोले अच्छा चलो।

बिमला ने कहा अच्छा चदरा लेलेओ।

दिग्गज ने रामनामी अगौंछा ओढ़लिया और बिमला के पीछे हो लिए और उसे पुकार कर पूछने लगे कि लौटेगी कब?

बिमला ने कहा क्या लौटने ही को चलती हूं।

दिग्गज हंसने लगे और बोले कि बर्तन जो हमारे छूट जांयगे।

बिमला ने कहा कुछ चिन्ता नहीं मैं तुम को नए ले दूंगी।

ब्राह्मण का जी उदास होगया परन्तु क्या करे अबला तो बड़ी प्रबला होती हैं। फिर बोले कि हमारी, "कगदहीं" जो रही जाती है!

बिमला ने कहा अच्छा शीध्र ले भी लेओ।

विद्यादिग्गज के गातेमें दो पोथी थीं एक व्याकरण और एक स्मृति, व्याकरणको हाथमें लेकर बोले कि इसका तो कुछ काम नहीं है, क्योंकि यह तो मेरे कण्ठाग्र है और केवल स्मृति को गाते में रख लिया, और श्रीदुर्गा कह कर आसमानी भी बिमला के साथ चली। थोड़ी दूर चल कर बोली कि तुम सब चलो मैं पीछे से आती हूं और आप घर चली गई। बिमला और गजपति साथ चले, दुर्ग से बाहर कुछ दूर जाकर दिग्गज ने कहा कि आसमानी नहीं आई?

विमला नें उत्तर दिया न आई होगी-क्या करना है।

रसिकदास चुप रहे, फिर कुछ काल में ठंढी सांस लेकर बोले बर्तन रह गया।

तेरहवां परिच्छेद : दिगज का साहस

चलते २ मान्दारणगढ़ धाम पार होगया रात अंधेरी बड़ी थी केवल नक्षत्रों के प्रकाश से कुछ कुछ मार्ग सूझता था मैदान में पहुंचकर विमला के मन में शंका हुई किन्तु दोनों सन्नाटे में चले जाते थे। बिमला ने गजपति को पुकार के कहा?

रसिकदास० | क्या सोचते हो?

रसिकदास ने कहा कि मैं बर्तनों का ध्यान कर रहा हूं। बिमला सुनकर मुंह पर कपड़ा देके हंसने लगी और फिर बोली कि क्यों दिग्गज तुम भूत से डरते हो कि नहीं? दिग्गज ने कहा राम राम कहो, राम राम, और सरक कर बिमला के समीप चले आये।

बिमला ने कहा, यहां तो भूत बहुत हैं। इतना सुनकर दिग्गज ने झपट कर बिमला का वस्त्र पकड़ लिया। फिर बिमला कहने लगी कि मैं उस दिन शैलेश्वर के दर्शन से लौटी आती थी मार्ग में उस बट के नीचे एक बढ़ी भारी मूर्ति देख पड़ी थी, इतने में जो दिग्गज की ओर दृष्टि पड़ी तो उसने देखा कि ब्राह्मण मारे डर के कांप रहा है, विशेष वार्ता से उसको शक्ति हीन होने के भय से बिमला ने बात टाल दी और कहने लगी "रसिकदास तुम गाना जानते हो?"

दिग्गज ने कहा, हां जानता क्यों नहीं।

तब बिमला ने कहा, अच्छा गाओ तो सही।

दिग्गज ने आरम्भ किया।

ए-हुम ऊं–"सखी री श्याम कदम्ब की डाल।"

मार्ग में एक गाय पड़ी खर्राटा ले रही थी इस अलोकिक राग को सुनकर भागी। रसिक गाने लगे।

"मोर पच्छ सिर सुमग बिराजै कर मुर्ली उर माल।

हँसि हँसि बात करत यदुनन्दन गिरवरधर गोपाल ॥१॥

ठाढ़ डगर अति रगर करत है रोकत सब बृज बाल।

गगरी फोरि नित चुनरी बिगारत करत अनेक कुचाल ॥२॥

इतने में मधुर संगीत ध्वनि सुनकर दिग्गज का राग बन्द होगया, बिमला गाने लगी उस सूनसान मैदान में रात्रि के समय जो उस कोकिल कण्ठी ने टीप ली शीतल समीर ने झट

पट उसको इन्द्र के अखाड़े तक पहुंचा दिया और अप्सरा सब कान लगा कर सुनने लगीं दिग्गज का भी कान वहीं था जब वह गा चुकी रसिकदास ने कहा और-

बि०| और क्या?

दि०| एक और गाओ।

बि०| अब क्या गाऊं।

दि०| एक बिहाग गाओ?

बिमला ने कहा अच्छा गाती हूं और गाने लगी।

"ठाढ़े रहो बांके यार गगरिया मैं घर धर आऊं। गगरी मैं धरि आऊं चुनरी पहिर आऊं करि आऊं सोरहो सिंगार ॥१॥

गाते २ बिमला को मालूम हुआ कि कोई पीछे से कपड़ा खींचता है, पीछे फिर कर देखा तो दिग्गज उसका अंचल पकड़े उससे सट के चला आता है, बिमला ने कहा क्यो क्या फिर भूत आया क्या?

ब्राहमण के मुंह से बात न निकली केवल उंगली के संकेत से दिखलाया कि 'वह।' बिमला सन्नाटे में आकर उसी ओर देखने लगी और खर्राटे का शब्द उसके कान में पड़ा और पथ के एक ओर कोई पदार्थ भी देख पड़ा। साहस पूर्व्वक उसके समीप जाकर देखा कि एक सुन्दर कसा कसाया घोड़ा मृत्यु से झगड़ रहा है। बिमला आगे बढ़ी और उस सैनिक अश्व के क्लेशकर अवस्था पर सोच करने लगी और कुछ काल पर्य्यन्त चुपचाप रही। जब आध कोस निकल गए तो दिग्गज ने फिर बिमला का अंचल पकड़ कर खींचा?'

बिमला ने कहा कौन।

गजपति ने एक वस्तु उठाकर देखाया, बिमला ने देखकर कहा यह किसी सिपाही की पगड़ी है और फिर सोचने लगी कि जिसका घोड़ा था, जान पड़ता है कि यह पगड़ी भी उसी की है।

नहीं तो यह किसी पदचारी की पगड़ी जान पड़ती है! इतने में चन्द्रमा का उदय हुआ, बिमला और घबराई—

किञ्चित काल के अनन्तर दिग्गजने "पूछा प्यारी बोलती क्यों नहीं?"

बिमला ने कहा मार्ग में कुछ चिन्ह देखते हैं।

दिग्गज ने भली भांति इधर उधर देख कर कहा बहुत से घोड़ों के पैर के चिन्ह देख पड़ते हैं!

बि०| वाह कुछ समझे भी?

दि०| समझे तो कुछ नहीं।

बि०| वहां एक मरा हुआ घोड़ा, यहां सिपाही की पगड़ी और पृथ्वी तल में घोड़ों के पदचिन्ह इतने पर भी तुम्हारे कुछ समझ में नहीं आया! कोई मरा अवश्य है।

दि०| क्या?

बि०| अभी इधर से कोई सेना गई है।

गजपति ने डर के कहा तो धीरे २ चलो जिसमें वे सब आगे बढ़ जांय।

बिमला हंसकर कहने लगी कि तुम बड़े मूर्ख हो। क्या वे आगे गए हैं? देखो तो घोड़ों की टाप का मुंह किधर हैं? यह सेना मान्दारणगढ़ को गई है।

थोड़ी देर में शैलेश्वर के मन्दिर की ध्वजा देख पड़ी। बिमला ने मन में कहा कि राजपूत और ब्राह्मण से साक्षात होना अच्छा नहीं क्योंकि कुछ अनिष्ट हो तो आश्चर्य्य नहीं अतएव इसको यहां से हटाना उचित है।

दिग्गज ने फिर आकर बिमला के आंचल को पकड़ा।

बिमला ने पूछा अब क्या हुआ?

ब्राहमण ने पूछा 'अब कितनी दूर और है?'

बि०| क्या कितनी दूर है?

दि०| वही वट वृक्ष!

बि०| कौन वट वृक्ष?

दि०| जहां तुम लोगों ने उसे देखा था।

बि०| क्या देखा था!

दि०| अरे रात को उस का नाम लेना न चाहिये।

बिमला समझ गई और औसर पाय बोली "ईह"

ब्राहमण और डर गया बोला "क्या है।"

विमला घबरा कर शैलेश्वर के मन्दिर के समीपवर्ती वट वृक्ष की ओर उँगली दिखा कर बोली "देखो वही वठ का पेड़ है।"

दिग्गज से आगे न बढ़ा गया और मारे डर के पत्ते की भांति कांपने लगा।

बिमला ने कहा "आओ।"

ब्राहमण ने कांपते २ उत्तर दिया कि मैं आगे नहीं जा सक्ता—

बिमला ने कहा कि मैं भी डरती हूं।

इतना सुनतेही ब्राहमण चट लौट खड़ा हुआ और भागने की इच्छा करने लगा।

बिमला ने वृक्ष की ओर देखा कि उसके नीचे कोइ बस्तु पड़ी है। मन में जाना कि महादेव का नन्दी है किन्तु गजपति से कहा! गजपति! ईश्वर का ध्यान करो। देखो वृक्ष के नीचे कुछ जान पड़ता है?

"अरे बापरे" कह कर दिग्गज चम्पत हुए और लंबे २ डगों से झट पट आध कोस निकल गये।

बिमला तो उस के स्वभाव को भली भांति जानती थी कि वह दुर्ग के द्वार पर जा कर सास लगा अतएव कुछ चिन्ता न कर मन्दिर की ओर चली।

चारो ओर देखती थी किन्तु राजपुत्र का कोई चिन्ह नहीं दीखता था और मन में कहने लगी कि उन्होंने तो कोई संकेत भी नहीं बताया था अब उन को कहां ढूढूं। यदि न मिले तो व्यर्थ क्लेश हुआ। ब्राह्मण को भी मैंने भगा दिया अब अकेली फिर कर कैसे जाउंगी। शैलेश्वर! तूही रक्षक है।

बट के पेड़ के नीचे से मन्दिर में जाने की राह थी। जब बिमला वहां पहुंची और सांड न देख पड़ा तो घबराई और स्वेत बस्तु भी जो दूर से झलकती थी गुप्त हो गई। मैदान में भी तो सांड़ कहीं नहीं देख पड़ा था!

अन्त को वृक्ष के पीछे एक मनुष्य का बस्त्र दृष्टिगोचर हुआ। बिमला मन में डरी और मन्दिर की ओर चली और सीढ़ी पर चढ़ के केवाड़ को ढकेला किंतु वह बन्द था। भीतर से शब्द हुआ "कौन!" विमला ने साहस पूर्वक धीर धारण कर के कहा मैं एक स्त्री हूं, यहां विश्राम करने को आई हूं।

केवाड़ खुल गया, देखा कि मन्दिर में दिया जलता है और सामने ढाल तलवार बांधे एक मनुष्य खड़ा है।

कुमार जगतसिंह पहिले से आकर बिमला की राह देख रहे थे।

चौदहवां परिच्छेद : शैलेश्वर साक्षात

बिमला मन्दिर के भीतर जाकर पहिले मार्गश्रम निवारणार्थ बैठ गई और फिर शैलेश्वर को सिर नवाय राजकुमार को प्रणाम कर हंस कर बोली "शैलेश्वर की कृपा से आज आप से फिर भेंट हुई, मैं तो अकेली इस मैदान में आते बहुत डरती थी किंतु अब आप के दर्शन से सब भय दूर हुआ।

युवराज ने पूछा सब कुशल तो है!

बिमला तो मन की बात जानती ही थी तिलोत्तमा प्रति राजकुमार के प्रेम की प्रतिज्ञा करने के निमित्त बोली "मैं आज इसी निमित्त शैलेश्वर की पूजा करने आई हूं कि जिसमें मंगल हो किंतु मुझको जान पड़ता है कि आपने अपनी ही पूजा से महादेव को छकित कर रक्खा है अब वे मेरी पूजा क्यों लेंगे।" आज्ञा हो तो मैं फिर जाऊं।

युव०| जाओ—परन्तु अकेली जाना अच्छा नहीं, चलो मैं तुमको पहुंचाय आऊं।

बिमला ने देखा कि युवराज केवल अस्त्र शस्त्र नहीं बरन सर्व विद्‌या मैं दक्ष है। बोली अकेली जाने में क्या हानि है?

यु०| मार्ग में अनेक प्रकार के भय हैं।

बि०| तब मैं महाराज मानसिंह के निकट जाऊंगी।

राजपुत्र ने पूछा क्यों?

बि०| क्यों? उनके पास जाकर फ़रियाद करूंगी कि जो सेनापति आपने नियत किया है उस्से हमलोगों का मार्ग निष्कण्टक नहीं हो सकता, उससे शत्रु का नाश नही हो सक्ता।

राजपुत्र ने हंसकर उत्तर दिया, सेनापति न कहेगा कि शत्रु का तो देवता भी कुछ नहीं कर सकते मनुष्य कौन खेत की मूली है। देखो महादेव जी ने तो कामदेव का नाश कर दिया परन्तु आज पन्द्रह दिन हुए उसने इसी मन्दिर में बड़ा उपद्रव मचाया था। इतना बड़ा बीर है!

बिमला मुसकिरा कर बोली, उसने क्या उपद्रव किया था

युवराज ने कहा कि उसने उसी सेनापति पर आक्रमण किया था।

बिमला बोली कि महाराज यह बात असम्भव है।

युव०| इसके दो साक्षी है।

बि०| ऐसा कौन साक्षी है?

युव०| सुन्दरी-राजकुमार की बात पूरी नहीं होने पाई कि बिमला बोल उठी महाराज! यह योग्य विशेषण नहीं है, हमको बिमला कहा कीजिए।

राजकुमार ने कहा "क्या बिमला साक्षी न देगी?"

बि०| बिमला ऐसी साक्षी न देगी।

युव०| सच है, जो पन्द्रह दिन में भूलती है वह क्या साक्षी देगी।

बि०| महाराज मैं क्या भूल गई बताओ तो सही?

युव०| अपनी सखी का पता।

बिमला शंका परित्याग धीर मन होकर बोली "राजकुमार पता बताने में संकोच होता है और यदि बताने पर आप को दुःख होय तो। राजकुमार ने चिंता करके कहा, बिमला सच पता बताने में क्या मेरी कुछ हानि है?

बिमला ने कहा हां हानि है।

राजपुत्र फिर चिन्ता करने लगे। थोड़ी देर बाद बोले जो हो अब तो तुम हमारे चित्त को उद्वेगरहित करो, अब मन नहीं मानता। तुम जो शंका करती हो यदि वह सत्य हो तो क्या इस दुःख से कुछ विशेष क्लेश कर होगा। मैं केवल कुतूहल बस तुमसे मिलने को नहीं आया हूं क्योंकि यह समय कुतूहल का नहीं है, पन्द्रह दिन हुए मैंने घोड़े की पीठ के अतिरिक्त शय्या का दर्शणमात्र भी नहीं किया है, इस समय में व्याकुलता का मिस कर के आया हूं।

बिमला इन बातों को सुनकर बोली युवराज आप राजनीति में बिज्ञ हो बिवेचना करके देखो कि इस दुष्कर संग्राम के समय आप को काम क्रीड़ा करना उचित है! मैं दोनों के हित को

कहती हूं आप मेरी सखी का ध्यान छोड़ दीजिए और अपने नियत कर्म्म में बद्धपरिकर होकर नियुक्त हूजिये।

युवराज खिसियायकर हंसने लगे 'प्यारी मैं उसको कैसे भूल जाऊं! उस प्राणेश्वेरी का चित्र मेरे पाहनहृदय पर ऐसा खचित होगया है कि बिधना भी उस को मिटा नहीं सकते और युद्ध की बात जो तूने कही सो तो मैं पहिले कह चुका कि जिस दिन से मैं तेरी सखी को देखकर गया हूं उस दिन से रणक्षेत्र में चलते फिरते जहां रहते हैं सर्वदा वही चन्द्र बदन आखों के सन्मुख रहता है बरन उसी के भ्रम से शत्रु के सिरच्छेदन में भी हाथ रुक जाया करता है। हे बिमला सच कह वह रूपराशि कब देख पड़ैगी। इतना सुन बिमला बोल उठी वह मनमोहनी वीरेन्द्रसिंह की पुत्री है और मान्दारणगढ़ ग्राम में रहती है।

जगतसिंह को सांप सा डस गया और कृपाण के ऊपर टुड्डी टेक कर किञ्चित काल पर्य्यन्त सोचते रहे फिर ठंडी सांस ले कर बोले बिमला तू सत्य कहती थी। तिलोत्तमा मुझको नहीं मिल सकती, अब मैं रणक्षेत्र में जाता हूं और वहीं कट कर मर जाऊंगा।

उनकी यह अवस्था देख विमला ने कहा युवराज आप आशाभग्न न हों कहा है कि "जेहिकर जेहिपर सत्य सनेहू सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू।" आज नहीं तो कल ईश्वर अवश्य दया प्रकाश करेगा, संसार आशा ही के स्तंभ पर स्थित है, हथेली पर सरसों नहीं जमती आप मेरी बात सुनिए और दुःख न कीजिए ईश्वर की महिमा को कौन जान सकता है। वह राई से पर्वत और पर्वत से राई बनाता है।

राजपुत्र ने आशा ग्रहण किया और कहा जो हो, अबतो मुझको कुछ भला बुरा नहीं सूझता। जो होना है सो तो हो होगा क्या ब्रह्मा का लिखा कोई मिटा सकता है? अब तो मैं इस शैलेश्वर के सन्मुख संकल्प करता हूं कि तिलोत्तमा के अतिरिक्त और कहीं किसी का पाणि ग्रहण न करूंगा। तुमसे मैं यही प्रार्थना करता हूं कि तुम जाकर यह सब बातें मेरी अपनी सखी से कह देना और यह भी कहना कि मैं एक बेर दर्शन की लालसा रखता हूं।

बिमला बहुत प्रसन्न हुई और बोली कि आपकी बात तो मैं उस्से कह दूंगी पर उस का उत्तर आप के पास कैसे पहुंचेगा!

युवराज ने कहा मैं कह तो नहीं सकता क्योंकि तुमको क्लेश बहुत होता है पर यदि तुम एक बेर और इस मन्दिर में आओ तो मैं तुम्हारा चिरवाधित हूंगा। मैं , भी कभी तुम्हारे काम आऊंगा।

बिमला बोली युवराज! मैं तो आपकी चेरी हूं किंतु अकेले इस मार्ग में भय लगता है, आज्ञा भंग करना उचित न समझ मैं आज यहां आई हूं फिर तो यहां का आना बड़ा कठिन है।

राजपुत्र चिन्ता करने लगे और फिर बोले अच्छा यदि कुछ हानि न हो तो मैं तुम्हारे संग चलूं और बाहर कहीं खड़ा रहूंगा। तुम मुझसे संदेसा कह जाना।

बिमला ने आनन्दमग्न होकर कहा "चलिए" ओर दोनों मन्दिर में से निकलने चाहते थे कि मनुष्य के चलने की आहट कान में पड़ी राजपुत्र ने विस्मित हो कर बिमला से पूछा क्या तुम्हारे संग और भी कोई है!

बिमला ने कहा नहीं तो।

रा०| फिर चलने का शब्द कैसा सुनाई देता है, मुझे डर मालूम होता है कि किसी ने हमारी बात सुन तो नहीं ली, और बाहर आकर मन्दिर के चारों ओर टहल कर देखा तो कोई दृष्टि न पड़ा।

पन्द्रहवां परिच्छेद : बीर पञ्चमी

दोनों शैलेश्वर को प्रणाम कर डरते हुए मान्दारणगढ़ की ओर चले, किश्चित काल पर्य्यन्त तो चुप रहे, फिर राजकुमार ने कहा बिमला मुझको एक सन्देह है कि तू परिचारिका नहीं है।

बिमला मुस्किरा कर कहने लगी "यह संदेह आपको क्यों हुआ?"

रा०| बीरेन्द्रसिंह की कन्या का विवाह राजा के पुत्र से न हो, इसमें कोई विशेष कारण है और तू यदि परिचारिका होती तो यह बात कदापि तुझको न मालूम होती।

विमला ने ठंढी सांस ली और कातरस्वर से बोली "आपका संदेह यथार्थ है मैं परिचारिका नहीं हूं, अदिष्ट बस यही काम करती हूं।"

राजकुमार ने देखा कि बिमला का मन रोआसा हो आया अतएव फिर उस विषय सम्बन्धी और कुछ न कहा। किन्तु विमला ने स्वतः कहा "युवराज मैं आपको बताऊंगी पर इस समय नहीं, देखो पीछे किसी के आने का शब्द सुनाई देता है, ऐसा जान पड़ता है कि दो मनुष्य परस्पर फुसकुसाय रहे हैं।"

राजकुमार ने कहा "मुझको भी सन्देह होता है, ठहरो मैं देख आऊं" और पीछे हटकर इधर उधर मार्ग के पार्श्वों में देखा तो मनुष्य का कहीं नहीं चिन्ह देख पड़ा। फिर आकर बिमला से बोले "मुझको शंका है कि कोई हमारे पीछे आता है, धीरे २ बात करो"। और दोनों धीरे २ बात करते हुए चले और थोड़ी देर में मान्दारणगढ़ में पंहुच कर दुर्ग के सामने आन खड़े हुए। राजपुत्र ने पूछा, "तू इस समय दुर्ग में कैसे जायगी? इतनी रात को फाटक तो बन्द होगा।"

बिमला ने कहा, "आप चिन्ता न करें मैं इसका प्रबंन्ध करके घर से चली थी।"

राजपुत्र ने हंसकर कहा, "क्या कोई चोर द्वार है क्या?" बिमला ने भी हंसकर कहा, "जहां चोर रहते हैं वही सिंह भी रहते हैं।"

फिर राजपुत्र ने कहा "बिमला, अब मेरे जाने का कुछ प्रयोजन नहीं है, मैं इसी अमराई में खड़ा हूं तू जाकर मेरी ओर से अपनी सखी से कह कि पन्द्रह दिन में अथवा महीने भर में अथवा वर्ष भर में एक बेर मुझको और दर्शन दे।"

बिमला ने कहा "यहां भी तो लोग रहते हैं आप मेरे संग चले आइए"।

रा०| तू कितनी दूर जायगी!

बि०| दुर्ग में चलिये।

राजकुमार ने सोच कर कहा 'बिमला यह तो उचित नहीं है। दुर्ग के स्वामी की आज्ञा है नहीं, मैं भीतर कैसे चलूं?'

बिमला ने कहा "कुछ चिन्ता नहीं?"

राजकुमार गर्वपूर्वक बोले 'राजपुत्रों को कहीं जाने मे चिन्ता नहीं है परन्तु देखो राजा के बेटे को बिना दुर्गेश की आज्ञा चोर की भांति भीतर जाना उचित नहीं है।'

बिमला ने कहा "मैं तो आपको संग ले चलती हूं!"

राजकुमार ने कहा 'तुम यह न जानो कि मैं परिचारिका समझ तुम्हारी बात काटता हूं किन्तु बताओ तो मुझको दुर्ग में ले चल कर क्या करोगी? और तुमको अधिकार कब है?'

'अच्छा तो जब तक मैं अपना अधिकार न बताऊं आप न चलेंगे?

राज०| निस्सन्देह न जाऊंगा।

विमला ने झुक कर राजपुत्र के कान में कुछ कहा।

राजपुत्र ने कहा "अच्छा चलो!"

बिमला राजकुमार को अमराई के भीतर से ले चली। किन्तु चलते समय फिर पत्तों के खड़खड़ाने से मनुष्य की आहट मालूम हुई।

बिमला ने कहा "देखो फिर"।

राज कुमार ने कहा "तुम तनिक और ठहरो मैं देख आऊं" और नंगी तलवार लेकर जिधर शब्द सुन पड़ा था उसी ओर चले पर कुछ देख न पड़ा। एक तो उस अमराई में झाड़ियों की बहुतायत तिस पर अन्धेरी रात दृष्टि भी दूर तक नहीं जाती थी और राजपुत्र ने यह भी समझा कि कौन जानि कोई पशु के चलने से पत्ता खड़का हो, किन्तु सन्देह निवाणार्थ एक वृक्ष के उपर चढ़ गए और चारो ओर देखने लगे तो एक वृक्ष के कुञ्ज में दो मनुष्य बैठे देख

पड़े। केवल झलक भर देख पड़ती थी। भली भांति उस वृक्ष को चिन्ह धीरे २ नीचे आए और सब समाचार बिमला से कह सुनाया और बोले-यदि इस समय दो बर्छा होता तो अच्छा था।

बिमला ने पूछा बर्छा क्या होगा!

रा०| तो जान लेता कि यह मनुष्य कौन हैं? लक्षण अच्छा नही दीखता। मैं जानता हूं कि कोई पठान दुष्ट इच्छा करके हमारे पीछे आता है! बिमला ने भी उस घोड़े और पगड़ी का समाचार उनसे कहा और बोली की आप यहीं टहरैं मैं अभी बर्छा लिए आती हूं और झट पट एक खिड़की की राह से अपनी उसी कोठरी में घुसी जहां श्रृंगार कर रही थी और छत के उपर एक कोठरी का ताला खोल भीतर गई और फिर ताला बन्द कर दीया। इसी प्रकार गढ़ के शस्त्रशाला में पहुंची। और पहरे वाले से बोली 'मैं तुमसे एक वस्तु मांगती हूं किसी से कहना न। मुझको दो बर्छा देओ मैं फिर दे जाऊंगी।'

पहरे वाले ने घबरा कर पूछा 'माता तुम बर्छा लेकर क्या करोगी।?'

बिमला ने कहा आज वीरपंचमी का व्रत है जो स्त्री आज व्रत रहती हैं उनको वीर पुत्र उत्पन्न होता है इसी लिये रात्रि को अस्त्र की पूजा करूंगी किसी से कहना मत। प्रहरी को विस्वास होगया और उसने दो बर्छा निकाल कर दे दिया और बिमला उसी प्रकार दौड़ती हुई कोठरी में से होकर खिड़की के राह बाहर आई किन्तु शीघ्रता के कारण ताला खुला छोड़ आई यही बुरा हुआ। जंगल के समीप एक वृक्ष था उस पर शस्त्रधारी बैठा था उसने बिमला को आते जाते देखा था, ताला खुला देख वह झट भीतर घुसा और दुर्ग में पहुंच गया।

यहां राज पुत्र ने बिमला से बर्छा ले फिर वृक्ष पर आरोहण करके देखा तो एक मनुष्य देख पड़ा दूसरा जाता रहा। एक बर्छा बायें और एक दहिने हाथ में ले ऐसा तिग कर मारा कि वह मनुष्य तुरन्त लुण्ड मुण्ड हो कर नीचे गिर पड़ा।

जगतसिंह शीघ्र वृक्ष के नीचे उत्तर उसी स्थान पर गए और देखा कि एक मुसलमान सैनिक मरा पड़ा है, बर्छा उसके कनपटी में लगा था। जब भली भांति देख लिया कि अब प्राण का लेश कुछ भी न रहा बर्छे को उसके कनपटी से निकाल लिया। उस मुर्दे के बस्त्र में एक पत्र भी पड़ा था। जगतसिंह ने इस पत्र को लेकर चांदनी में पढ़ा उसमें लिखा था।

"कतलू" खां के समस्त आज्ञाकारियों को उचित है कि पत्र वाहक की आशा प्रतिपालन करें।

-कतलू खां।

विमला ने भी सुना परन्तु उसने कुछ समझा नहीं। राजकुमार ने उसके निकट आकर सब बृत्तान्त कह सुनाया! विमला बोली युवराज यदि मैं यह जानती तो कदापि आप के लिए बर्छा न लाती और मैंने बड़ा पाप किया।

युवराज ने कहा बैरी के मारने में कुछ दोष नही वरन धर्म्म होता है।

विमला ने उत्तर दिया योधा लोग ऐसाही करते हैं पर मैं तो जानती हूं। और थोड़ा ठहर कर फिर बोली "राजकुमार अब यहां ठहरना अच्छा नहीं, दुर्ग में चलिए मैं द्वार खुला छोड़ आई हूं।

दोनों जल्दी २ चले। पहिले बिमला भीतर घुसी। राजपुत्र का हृदय और पांव कांपने लगा। प्रेम का पथ ऐसाही है। ऐसा तेजस्वी सेनापति जो शस्त्र धार के संमुख मुंह न मोड़ता इस पथ में पैर रखतेही कांपने लगा। लिखा है। "चढ़ी के मैं न तुरंग पै चलिवो पावक माहिं। प्रेम पंथ ऐसी कठिन सवहीं पावत नाहिं।"

बिमला पूर्वत खिड़की बन्द कर राजपुत्र को अपने में लेगई और बोली कि आप यहीं ठहरें मैं अभी आती हूं और वहां से चली गई।

थोड़ी देर में एक दूसरी कोठरी का द्वार खुला और बिमला राजकुमार को पुकार कर कहने लगी "यहां आकर एक बात सुनिये।

युवराज का हृदय और भी कांपने लगा और उठकर उसके पास गए।

बिमला तुरन्त वहां से टर गई, राजकुमार ने देखा कि कोठरी अति उत्तम और स्वच्छ है और भीतर से सुन्दर सुगन्ध आरही है मणिमय दीप जल रहा है और घूंघट काढ़े एक स्त्री बैठी है।

सोलहवां परिच्छेद : चातुर्य्य

कार्य्य समापन पश्चात बिमला प्रफुल्ल बदन अपनी कोठरी में पलङ्ग पर बैठी है, दीप जल रहा है, आगे मुकुर रक्खा है देखा तो सन्ध्या को श्रृङ्गार करके गई थी सब उसी प्रकार बना है। बाल बिखरे नहीं, आंखों के कज्जल में कुछ भेद नहीं आया, ओंठो पर धड़ी बंधी है और कान कुंडल भी वही असीम शोभा दिखा रहा है। भृङ्गी भाव से तकिया पर लेटी मूर्ति नवयुवतियों को मान हीन करती थी। इस प्रभा को आरसी में निहार बिमला मुस्किराई।

इस अवस्था में बैठी जगतसिंह की राह देख रही थी कि इतने में अमराई में तुरुही का शब्द हुआ और वह चिहुंक उठी। फाटक के अतिरिक्त अमराई इत्यादि कहीं तुरुही नहीं बजती थी, आज इतनी रात को क्या बात है मार्ग का व्यापार सब स्मरण करके मनमें अमङ्गल का अनुभव करने लगीं और खिड़की की राह अमराई की ओर देखने लगी। फिर घबरा कर कोठरी के बाहर निकल आई और आंगन में होकर सोपान द्वारा अटारी पर चढ़ इधर उधर देखने लगी किन्तु पेड़ों की छाया और अंधेरी रात के कारण कुछ देख न पड़ा, मुंडेरे के नीचे झांक कर देखा परन्तु कहीं कुछ दिखाई न दिया। अमराई में बड़ा अंधेरा था,। उदास होकर नीचे उतरना चाहती थी कि अकस्मात किसी ने आकर उसके पीछे से उसको स्पर्श किया, उलट कर देखा कि शस्त्र बांधे एक मनुष्य खड़ा है उसको देखतेही हाथ पैर ढ़ीले हो गए और पुतली सी खड़ी रह गई।

शस्त्रधारी ने कहा "सावधान" चिल्लाना न, नहीं तो उठा कर छत के नीच फेंक दूंगा।"

इस मनुष्य का पहिरावा पठान सैनिक का सा था परन्तु उत्तमता के कारण बोध होता था कि यह कोई उच्च पद धारी है। उमर उसकी अभी तीस बर्ष से अधिक नहीं थी और श्री उसके मुंह पर दीप्तमान थी पगड़ी में एक हीरा भी लगा था। बीरता तो उसमें जगतसिंह से कम नहीं झलकती थी पर शरीर उतना विशाल नहीं था। कटिबन्द में तेगा और हाथ में नंगी तलवार लिए था।

उसने कहा खबरदार जो चिल्लायगी तो अभी नीचे डाल दूंगा।

परम चतुर विमला किञ्चित काल पर्य्यन्त बिहली थी आगे मृत्यु और पाछे गड़हा प्राण रक्षा का उपाय केवल इश्वराधीन था, धीरे से बोली "तुम कौन हो?"

सैनिक ने उत्तर दिया तू पूछ कर क्या करेगी?

बिमला ने कहा तुम इस दुर्ग में क्या करने आए। चोर को फांसी होती है क्या तुमने नहीं सुना?

सै०| प्यारी मैं चोर नहीं हूं।

बि०| तुम दुर्ग में कैसे आए?

सै०| तुम्हारेही करते आया हूं? जब तू द्वार खोल कर चली गई उसी समय मैं भीतर आया और तेरेही पीछे २ चला आता हूं।

विमला ने अपना माथा ठोंका फिर पूछा तुम हौ कौन?

सै०| मैं पठान हूं।

बि०| यहतो कुछ नहीं हुआ जाति के पठान हो पर हौ कौन?

सै०| मुझको उसमान खां कहते हैं।

वि०| उसमान खां को तो मैं जानती नहीं।

सै०| उसमान खां कतलू खां का सेनापति।

बिमला का शरीर कांपने लगा और मनमें आया कि किसी प्रकार बीरेन्द्रसिंह को समाचार पहुंचता तो अच्छा था, किन्तु कोई उपाय नहीं क्योंकि यह तो आगेही खड़ा है। जब तक यह बात करता है तभी तक अवकाश हैं इतने में यदि कोई प्रहरी आजाय तो बड़ी बात हो और उसको बातों में उलझा लिया।

आप इस दुर्ग से क्या करने आए?

उसमान खां ने उत्तर दिया "हम लोगों ने बीरेन्द्रसिंह के पास दूत भेजा था पर उन्होंने उत्तर दिया कि तुम लोगों से जो करते बने सो करो।"

बिमला ने कहा "जाना, दुर्गेश ने आपलोगों से मित्रता न करके मोगलों से मेल किया है इस लिए तुमलोग दुर्ग को लेने आए हो किन्तु तुमतो अकेले हो"

उस०| अभी तो मैं अकेला हूं।

बिमला ने कहा तभी मारे डरके हमको नहीं छोड़ते हो।

अपमान सूचक बचन सुन कर सम्भव है कि पठान मार्ग छोड़ दे यह सोच कर बिमला ने यह बात कही।

उसमानं ने हंस के कहा प्यारी मैं केवल तेरी कटाक्ष का भय करता हूं किन्तु यह चाहता हूं कि—

बिमला उसके मुंह कि तरफ देखने लगी।

"तुम्हारे पास जो ताली है वह हमको देदो हम तुम्हारे शरीर छूने में संकोच करंते हैं।

बिमला ने मुसकिरा कर कहा "अंगस्पर्श तो दूर रहे अभी तो तुम हमको नीचे डाले देते थे।

सेनापति ने कहा समय पर सब काम करना होता है, अभी कोई काम पड़े तो देखो।

बिमला ने देखा कि ताली की इसको बड़ी आवश्यकता है यदि ऐसे न दूं तो छीन कर ले लेगा। दूसरा कोई ऐसे अवसर पर यथाशक्य ताली को फेंक देता पर बिमला ने कालयापन की आशा से कहा—

'महाशय! यदि मैं ताली न दूं तो आप क्या करेंगे?" और ताली हाथ में ले ली।

उसमान की दृष्टि उसी ओर थी, उसने कहा छीन कर ले लूंगा।

अच्छा छीनिए कह कर बिमला ने चाहा कि कुंजी अमराई की ओर फेक दें किन्तु सेनापति ने झपट कर उसका हाथ पकड़ चाभी छीन ली।

बिमला इस पर बहुत ख़िसिआई। पहिले तो सेनापति ने चाभी टेंट में किया फिर और २ जो कुछ किया वह विमलाही जानती है और पकड़ कर उसका हाथ पैर भी बांध दिया।

बिमला ने कहा यह क्या।

उसमान ने कहा यह तुम्हारा पुरस्कार है।

बि०| इस कर्म्म का फल तुमको शीघ्र मिलेगा।

सेनापति विमला को उसी अवस्था में छोड़ चला गया और कुछ दूर जाकर फिर लौटा, स्त्रियों की रसना का विश्वास नहीं, और उसका मुंह भी बांध दिया।

पूर्वोक्त राह से उतर कर विमला की कोठरी के नीचे वाली कोठरी में पहुंचा और उसी की भांति चाभी लगाय द्वार खोल उसमान खां ने धीरे २ सीटी बजाई, उसको सुन अमराई में से एक मनुष्य उबेने पैर धीरे २ आया और घर में घुस पड़ा, उसके पीछे एक और आया इसी प्रकार बहुत से पठान भीतर घुस आए। अन्त में जो एक मनुष्य आया उससे उसमान ने कहा-बस और नहीं तुम लोग बाहर रहो जब मैं शब्द करूं तो दुर्ग पर आक्रमण करना, ताज खां से भी कह देना।

वह फिर गया और उसमान इस टुकड़ी को लेकर फिर कोठे पर चढ़े और जहां बिमला बंधी पड़ी थी वहीं पहुँच कर बोले यह स्त्री बड़ी चतुर है इसका कभी विश्वास न करना रहीम शेख तुम्हारा इस पर पहरा है। मुंह इसका खोल दो और यदि भागे अथवा किसी से कुछ कहै या चिल्लाय तो स्त्री के मारने में कुछ दोष नहीं है अच्छाः—बहुत अच्छा, कह कर रहीम वहां ठहर गया।

पठानों की सेना एक छत से दूसरे छत पर होकर दुर्ग के अन्यत्र चल गई।

सत्रहवां परिच्छेद : प्रेमी

जब बिमला ने देखा कि उसमान अन्यत्र चलागया तो मन में कुछ भरोसा हुआ कि ईश्वर चाहे तो अब बन्धन से छूट जाउं और शीघ्र उसका उपाय करने लगी।

कुछ देर बाद उसने प्रहरी से वार्तालाप आरंभ की। यमदूत क्यों न हो। मनमोहनी की बात सुन मन चलायमान होही जाता है। पहिले तो विमला ने नाना प्रकार की बातचीत की फिर उसका नाम धाम आदि गृहस्ती की बातें पूछने लगी और प्रहरी का भी जी लगने लगा। औसर पाय बिमला ने धीरे २ जाल फैलाया। एक तो सुन्दर स्त्री, दूसरे प्रेममय अलाप, तीसरे तिर्छी चितवन, प्रहरी तो घायल हो गया। बिमला ने देखा कि अब यह भली भांति आशक्त हो गया और कहा-तुम डरते क्यों हो शेख़ जी? यहां हमारे समीप आकर बैठो।

कहने की देर थी पठान आम की भांति टपक पड़ा। इधर उधर की बात करते २ जब बिमला के देखा कि अब विष विध गया है और प्रहरी बार-बार उसके मुंह की ओर देख रहा है तो बोली।

शेख़जी क्या नींद आती है? यदि मेरा हाथ खोल दो तो मैं तुमको पंखा झल दूं फिर बांध देना। शेख़जी के माथे में पसीना भी निकल आया था, फिर ऐसे कोमल हाथों की हवा खाने को किसका जी न चाहेगा? प्रहरी ने उसका बन्धन खोल दिया।

बिमला थोड़ी देर तक अपने अंचल के झलती रही फिर बोली, शेख़जी? तुम्हारी स्त्री क्या तुमको चाहती नहीं?

शेख़ जी ने विस्मित होकर कहा, क्यों?

बिमला ने कहा शेख़ जी! कहते लाज लग्ती है किन्तु जो तुम हमारे पति होते तो मैं कभी तुमको लड़ाई पर न जाने देती।

प्रहरी ने फिर ठंढी स्वांस ली।

विमला बोली, "हा! तुम मेरे स्वामी न हुए"! और एक आह ली, इस आघात के सहने की प्रहरी को सामर्थ न थी और वह सरक कर विमला के समीप आगया, बिमला ने भी सरक कर उस को भरोसा दिया।

शेख को उसके अंग स्पर्श से "विहिश्त" में पहुँचने के लिये केवल तीन डण्डे शेष रह गए।

बिमला ने अपना हाथ प्रहरी के हाथ में दे दिया और बोली 'क्यों, शेख जी! जब तुम यहां से चले जाओगे तो क्या तुम को मेरा स्मर्ण रहेगा।

शे०| वाह, तुमको भूल जाऊंगा।

वि०| तो मैं तुम को अपने मन की बात बताऊंगी।

शे०| हां कहो।

वि०| नहीं, नहीं, मैं नहीं कहूंगी, तुम अपने जी में न जाने क्या समझो।

शे०| नहीं, नहीं, कहो, मैं तो तुम्हारा सेवक हूं।

वि०| मेरे मन में आता है कि अपने स्वामी को छोड़ तुम्हारे संग भाग चलूं, ओर तिरछा आखें करके उसके मुंह की ओर देखने लगी।

शेख जी मारे आल्हाद के फूल गए, और बोले चलो न।

वि०| ले चलने कहो तो चलैं।

शेख०| वाह तुमको न ले चलूंगा! प्राण मांगो तो दे दूं।

बि०| अच्छा तो यह लो, और गले से सोने की माला निकाल कर प्रहरी के गले में डाल दिया और बोली "हमारे शास्त्र में माला द्वारा विवाह होता है"।

प्रहरी ने दांत बाय कर कहां, तो हमारी तुम्हारी शादी हो गई! "होही गई" कहके विमला चुप रह कर कुछ सोचने लगी।

प्रहरी ने कहा क्या सोचती हो?

वि०| क्या सोचूं मेरे भाग्य में सुख नहीं है।

शेख०| क्यों?

बि०| तुम लोग यहां जय न पाओगे?

शे०| जय हुआ कि होने को है।

बि०| ऊं-हूं इसमें एक भेद है।

श०| क्या भेद है?

बि०| तुमसे कह दूं।

शे०| हां।

बिमला ने कुछ संकोच प्रकाश किया।

शेख जी ने घबरा कर कहा क्यों, क्या है।

बिमला बोली तुम जानते नहीं, जगतसिंह दस सहस्त्र सेना लिए इसी दुर्ग के समीप ठहरे हैं उनको यह मालूम है कि आज तुमलोग यहां आओगे, अभी कुछ न बोलेंगे, किंतु जब तुम लोग दुर्ग जय कर निश्चिंत हो जाओगे तब तुमको आकर घेर लेंगे।

प्रहरी चुप रह गया।

बि०| यह बात दुर्ग के सब लोग जानते हैं।

प्रहरी ने प्रसन्न होकर कहा सुनो, आज तुमने, बड़ा काम किया, मैं अभी जाकर सेनापति से यह बात कहता हूं, ऐसे समाचार देने से पुरस्कार मिलता है। तुम यहीं बैठी रहो मैं अभी आता हूं।

बिमला ने कहा आओगे तो!

शे०| आऊंगा क्यों नहीं, अभी आया।

बि०| देखो हमको भूल न जाना।

शे०| नहीं, नहीं।

बि०| देखो हमी को खाओ।

कुछ चिन्ता नहीं, कहता हुआ प्रहरी दौड़ा।

उसको आंख से ओट होतेही बिमला भी वहां से भगी।

अठारहवां परिच्छेद : प्रकोष्टाभ्यन्तर

पहिले बिमला के मनमें आई कि चलकर इसका सम्वाद बीरेन्द्रसिंह को देना चाहिए और उसी ओर दौड़ी, आधी दूर नहीं गई थी कि पठानों का अल्ला २ उसके कान में पड़ा

क्या! पठानों ने जय पा ली? बिमला बहुत व्याकुल हुई, थोड़ी देर में बड़ा कोलाहल हुआ और जान पड़ा कि दुर्ग में सब सजग होगए। घबराई हुई बीरेन्द्रसिंह की कोठरी में जाकर देखा तो वहां भी बड़ा कोलाहल मचरहा है, झांक कर देखा कि बीरेन्द्रसिंह कमर बाँधे हाथ में नंगी तलवार लिए रूधिराव शिक्त उन्मत्त की भांति अति घूणित फिरते है, किन्तु निष्फल, एक पठान ने ऐसे ज़ोर से तरवार मारी कि हाथ की कृपाण भूमि में गिर पड़ी और बीरेन्द्रसिंह पकड़े गए।

बिमला देख भाल, भग्नाशा हो वहां से चली। उस समय तिलोत्तमा स्मरण हुई और उसके यहां दौड़ी, पर मार्ग में देखा कि तिलोत्तमा के यहां जाना बड़ा कठिन है। छत पर, सीढ़ी पर, कोठरी दर कोठरी जहां देखा वहीं पठान सेना। दुर्ग जय हो जाने की शंका फिर मनमें न रही।

जब बिमला ने देखा कि तिलोत्तमा के यहां जाने में धोखा है तो वहां से लौटी और मनमें सोचती जाती थी कि अब जगतसिंह और तिलोत्तमा को इसका समाचार कैसे पहुंचाऊं! खड़ी २ एक कोठरी में इसी प्रकार सोच रही थी कि पठान लूटते २ इसी कोठरी के निकट आ पहुंचे वह मारे डरके एक सन्दूक के पीछे छिप रही। सिपाहियों ने आकर उस कोठरी में भी लूट

मचा दी। बिमला ने देखा कि यहां भी बचाव नहीं हो सकता क्योंकि लुटेरे जब आकर इस सन्दूक को खोलेंगे तब, मैं पकड़ जाऊंगी। कुछ काल तो जान पर खेल वहीं पड़ी रही और सिर उठा कर देखा कि लुटेरे क्या करते हैं। उनको अपने काम में दशो चित्त से लिप्त देख धीरे २ वहां से निकल कर भागी, किसी ने देख नहीं पाया किन्तु द्वार से बाहर निकलतेही एक सैनिक ने पीछे से आकर उसका हाथ पकड़ लिया। पीछे से फिरकर जो उसने देखा तो रहीम शेख़ ने कहा 'क्यों' अब कहां भाग कर जायगी।

बिमला का मुंह सूख गया, परन्तु बुद्धि प्रकाश द्वारा बोली 'चुपचाप बाहर चले आओ' और उसका हाथ पकड़े पकड़े बाहर खींच ले गई रहीम उसके साथ चला गया। एकान्त में ले जाकर विमला ने उसे कहा छी, छी, छी, ! ऐसा कोई काम करता है? मुझको छोड़ के तुम कहां चले गए? मैंने तुम्हारे लिए कूओं में बांस डलवा दिए।'

एक बेर उस मधुर चितवन को देख फिर रहीम खां का रोष शांत हुआ और बोले, 'मैं जगतसिंह का सम्वाद देने को सेनापति को ढूंढ़ता था, जब वे न मिले तो फिर तेरे पास आया पर तू वहां थी ही नहीं, तेरी ही शोध में फिर रहा हूं।

बिमला ने कहा 'जब अतिकाल हुआ तो मैंने जाना कि तुम हमको भूल गये इसी लिए तुमको खोज रही हूं, अब क्यों विलम्ब करते हो! दूर्ग जय तो हो ही गया, अब भागने का उद्योग करना चाहिये।

रहीम ने कहा 'आज नहीं कल प्रातःकाल क्योंकि, बिना कहे कैसे चल सकता हूं! कल सेनापति से विदा होकर चलूंगा।'

बिमला ने कहा, अच्छा चलो आज अपना गहना इत्यादि रखदें नहीं तो कोई लुटेरा ले लेगा।

सैनिक ने कहा,'चलो।'

रहीम को साथ लेने का यह अभिप्राय था कि उसके कारण दूसरा कोई सैनिक उस पर हाथ न डाल सकेगा और, यह बात शीघ्र देख पड़ी। थोड़ी दूर जाने के अनन्तर एक दल लुटेरों का मिला, बिमला को देख उन सबों ने कोलाहल किया।

"देखो कैसा पक्षी हाथ लगा।"

रहीम ने कहा, 'अपना २ काम करो' इस ओर कोई दृष्टिपात न करना, और वे सब ठिठक रहे। एक ने कहा, रहीम तू बड़ा भाग्यशाली है नवाबों के मुंह का निवाला छीन लेता है।

रहीम और विमला चले गये।

बिमला रहीम को अपने शयनागार के नीचे वाली कोठरी में ले जाकर बोली, 'यह हमारा नीचे का घर है। जो २ सामग्री इसकी तुमको लेना हो सब ले लो और इसके ऊपर मेरा शयनागार है, मैं अभी अपना अलंकार आदि लेकर आती हूं और उसके आगे एक तालियों का गुच्छा फेंक दिया।

रहीम बहु सामग्री संयुक्त घर देख कर सन्दूक पेटारा आदि खोलने लगा।

बिमला ने बाहर आकर कोठरी की कुंडी चढ़ा दी और शेख जी भीतर बन्द हो गए। सच है लालच विनाश करती है?

वहां से दौड़ कर विमला ऊपर वाले घर में गई, उसके और तिलोत्तमा के घर में केवल थोड़ा ही अन्तर था किन्तु लुटेरे अभी यहां नहीं पहुंचे थे, वरन यह भी सन्देह था कि तिलोत्तमा और जगतसिंह ने यह बात सुनी भी नहीं। कौतुहलवशत: विमला केवाड़ों की झरी से देखने लगी और अन्तस्थित भाव देख कर विस्मित हुई।

"तिलोत्तमा पलंग पर बैठी और जगतसिंह उसके समीप चुप चाप खड़े उसके मुंह की प्रभा देख रहे थे। तिलोत्तमा रोती थी और जगतसिंह आंसू पोछ रहे थे।"

विमला ने मन में कहा "जान पड़ता है यह विरह रोदन है?"

उन्नीसवां परिच्छेद : खड़ग प्रहार

विमला को देखकर जगतसिंह ने पूछा कौन कोलाहल करता है?'

बिमला ने कहा, 'पठानों ने दुर्ग ले लिया शीघ्र उपाय कीजिये, एक पल में शत्रु आप के सिर पर आ जायेंगे।

जगतसिंह ने कुछ चिन्ता कर के कहा 'बीरेन्द्रसिंह क्या करते हैं?'

बिमला बोली, 'वे तो पकड़ गए'

तिलोत्तमा चिल्लाने लगी और मुर्छित हो पलंग पर गिर पड़ी।

जगतसिंह ने मुंह सुखाकर कहा, देखो २ तिलोत्तमा को देखो।'

बिमला ने झट 'गुलाबपास' उठा लिया और तिलोतमा के मुख पर, कण्ठ पर और शिर पर भली भांति छिड़का और पंखा झलने लगी?

शत्रु और समीप आगये और बिमला रोने लगी और बोली 'देखो' यह आगये। राजपुत्र अब क्या होगा?'

जगतसिंह की आंखैं लाल होगई और आग बरसने लगी। हा! क्या हमको इस समय अन्तः पुर में स्त्रियों के साथही मरना था।

बिमला का भी मन मटक गया, राजपुत्र से कहने लगी 'अब क्या होगा युवराज? क्या यहां तिलोत्तमा के साथ मरना होगा?' और फिर रोने लगी।

राजपुत्र भी मनमें बहुत पिड़ित हुए और बोले 'मैं तिलोत्तमा को इस दशा में छोड़ कर कहां जाऊं? मैं भी तेरी सखी के संग प्राणत्याग करूंगा।

इसी समय एक भारी शब्द हुआ और अस्त्र की झनकार भी कान में पड़ी बिमला चिल्लाने लगी।

'हा तिलोत्तमा! हा! तेरी क्या दशा हुइ? अब तुझको कैसे बचाऊं?'

तिलोत्तमा ने आंखें खोली, बिमला कहने लगी 'तिलोत्तमा को चेत हुआ। राजकुमार! ए राजकुमार? इससमय तिलोत्तमा को बचाओ।

राजकुमार ने कहा 'इस घर में रहकर कौन रक्षा कर सकता है। यह सम्भव होता तो मैं तिलोत्तमा को बाहर निकाल ले जाता। परन्तु तिलोत्तमा तो चल भी नही सकती। देखो बिमला, पठान सीढ़ी पर चढ़े आते हैं। पहिले मैं बलि होता हूं किन्तु तब भी तुम्हारी रक्षा नहीं होती।'

बिमला ने तुरन्त तिलोत्तमा को गोद में ले लिया और बोली, 'चलिये मैं तिलोत्तमा को ले चलूंगी।'

दोनों कमरे के बाहर आए।

जगतसिंह ने कहा 'हमारे पीछे चली आओ

पठानों ने 'माल' देख वाह वाह पुकारा और यम के दूतों की भांति कूदने लगे। राजपुत्र ने तरवार म्यान से निकाल ली और हन के एक के सिर पर मारी कि पार होगई इतने में एक पठान ने राजपुत्र के गर्दन पर जड़ी, पर ओछी लगी। उसका हाथ पकड़ युवराज ने एक ऐसी दी कि वह लम्बा हो गया। शेष दो पठान जो थे उनने तीक कर जगतसिंह के मस्तक पर एक तरवार मारी परन्तु राजपूत ने जो लपक कर एक ऐसी कमर में हनी कि एक तो दो टुक हो गया दूसरे को तरवार कन्धे में लगी। रुधिर देख कर बीर को दूना रोष हुआ, जब तक पठान उबाता था जगतसिंह ने दोनों हाथों से कृपाण पकड़ ऐसे धड़ाके से मारा कि शरीर के आरपार होगई। पर लिखा है कि "मरतिहु बार कटक संहारा।' शक्ति के प्रभाव में राजकुमार भी गिर पड़े और मृतक के कमर की छुरी पेट में धंस गई, पर उसका कुछ ध्यान न कर राजकुमार ने एक और तलवार उसके सिर में मारी, इतने में बहुत से सिपाही अल्ला अल्ला करते आन पहुंचे राजपुत्र ने देखा कि अब लड़ना केवल प्राण देना है। शरीर से रुधिर बह रहा था और कुछ सुस्ती भी आगई थी।

तिलोत्तमा को अभीतक चेत नही हुआ था, विमला उसको गोदी में लिये इधर उधर कूदती थी और उसके भी वस्त्र में रुधिर लगाथा।

राजकुमार उसके उपर भार देकर स्वास लेरहे थे कि एक पठान ने कहा "अरे कायर! अस्त्र छोड़ेगा कि नहीं? तेरा प्राण लूंगा।"

अप्रतिष्ठित शब्द सुन कर युवराज को और रोष हुआ ओर कूद कर उसके ऊपर चढ़ बैठे और तरवार उठाय कर बोले, "दुष्ट? देख राजपूत ऐसे प्राण त्याग करते हैं।"

राजपूत्र ने जब देखा कि अकेला युद्ध करना उचित नहीं इस से तो मर जाना अच्छा है तो शत्रुदल में घुस कर दोनों हाथों से तरवार भांजने लगे. शरीर का ध्यान कुछ भी न रहा, एक दो तीन पठान हर हाथ में गिरते थे और कितने घायल भी हुए। वे भी चारों ओर अस्त्र की वर्षा करते थे, यहां तक कि राजकुमार की शक्ति हीन हो चली और घुमटा आने लगा, आंखों के सामने अंधेरा होने लगा और करणेन्द्रिय भी जवाब देने लगी। इतने में एक शब्द हुआ कि, 'राजकुमार को मारना मत घेर के पकड़ लो।'

रुधिर का प्रवाह होते २ युवराज मूर्छा खाकर भूमि पर गिर पड़े और तरवार भी हाथ से छूट गई। उनको पगड़ी में हीरा लगा था उसके लूटने के लिए बीसिओं पठान दौड़े किन्तु उसमान खां ने मना करके कहा "देखो राजपुत्र को छूना नहीं।" इसपर सब हट गए और उसमान खां और एक सैनिक दोनों ने मिलकर राजकुमार को उठा कर एक चारपाई पर डाल दिया। हा! जिस पलंग पर राजकुमार ने तिलोत्तमा के साथ सोने की आशा की थी वह पलंग मृतसय्या हुई। परमेश्वर की महिमा अपार है।

उनको पलंग पर सोलाय उसमान खां ने पूछा, स्त्री दोनों क्या हुई? उसने विमला और तिलोत्तमा को नहीं देख पाया वह दोनों तो चारपाई के नीचे छिपी थीं।

स्त्री दोनों क्या हुई, उनको ढूंढ़ो परिचारिका बड़ी चतुर है यदि निकल गई तो अच्छा न होगा। किन्तु बीरेन्द्र की कन्या को कुछ क्लेश न होने पावे। इस आज्ञा को पाय सिपाही चारों ओर ढूंढने लगे दो एक उस कोठरी में दीपक लेकर देखने लगे, जो चारपाई के नीचे दृष्टि पड़ी देखा तो दोनों पड़ी थीं, मारे आह्लाद के चिल्ला उठे, 'अरे ये तो यहां है।'

उसमान ने व्यग्र होकर कहा, 'कहां?'

उत्तर में फिर 'हे' शब्द सुनकर उसमान का चित्त प्रसन्न होगया और बोले, 'अच्छा तुम लोग बाहर निकल आओ कुछ चिन्ता नहीं।'

बिमला तिलोत्तमा को लेकर बाहर आकर बैठी इतने में उसको कुछ चेत हुआ और उठकर बैठी और धीरे २ विमला से पूछने लगी 'यहां कहां आए?'

बिमला में उसके कान में कहा 'कुछ चिंता नहीं तुम घुंघट काढ़ कर बैठो।'

जो मनुष्य स्त्रियों को बाहर लाया था उसने सामने आकर कहा, जनाब! गुलाम इसको ढूंढ कर लाया है।'

उसमान ने कहा, 'तू पूरस्कार मांगता है? तेरा नाम क्या है?' उसने कहा, 'गुलाम का नाम करीमबख्श है परन्तु इस नाम से कोई चीन्हता नहीं। मैं पहिले मोग़ल की सेना में था और वहां लोग मुझको मोगल सेनापति कहते थे वही नाम अब भी है।'

बिमला चिहूंक उठी उसको अभिराम स्वामी का ध्यान आगया।

उसमान ने कहा,'अच्छा स्मर्ण रक्खूंगा'॥

॥ इति प्रथम खंड ॥

द्वितीय खण्ड

प्रथम परिच्छेद : आपेशा

जगतसिंह की आंख खुली तो देखा कि एक सुन्दर महल में पलंग के ऊपर पड़े हैं, कोठरी अति प्रशस्थ और सुशोभित है, पत्थर के चट्टान पर एक बहुमूल्य 'गलीचा' पड़ा है और उपर सोने चांदी के गुलाबपाश इत्रदान, इत्यादि धरे हैं, द्वारों में खिड़कियों में और झरोखों में धानी परदे पड़े हैं और चारों ओर से सुन्दर सुगन्ध आ रही है।

परन्तु घर सूनसान था, केवल एक किंकरी खड़ी चुपचाप पंखा झल रही थी और एक दूसरी उसके पीछे खड़ी देख रही थी। जिस पलंग पर जगतसिंह सोते थे उसके एक तरफ एक स्त्री

बैठी उनके चोटों में औषध लेपन कर रही थी और गलीचे पर एक सुवेषित यवन बैठा पान खा रहा था और आगे उसके एक फ़ारसी पुस्तक धरी थी। किन्तु सब सन्नाटे में थे, किसीके मुंह से शब्द नहीं निकलता था राजपुत्र ने चारों ओर देखा और चाहा कि करवट ले पर शरीर की वेदना के कारण फिरा नहीं गया।

पार्श्ववर्ती स्त्री ने राजकुमार की यह दशा देख धीरे से कहा 'चुपचाप पड़े रहो हिलो डोलो न।'
राजकुमार धीमे स्वर में बोले 'मैं कहाँ हूँ ?'
उस स्त्री ने कहा 'आप चुपचाप रहे चिन्ता न करें।'
राजपुत्र ने फिर धीरे से पूछा 'कै वजे होंगे ?'
स्त्री ने कहा 'दोपहर होगई। आप चुप रहिये बोलने से घाव टूटने का भय रहता हैं और नहीं तो हमलोग जाते हैं।'
राजपुत्र ने दीनता प्रकाश पूर्वक फिर पूछा 'तुम कौन हो ?'
स्त्री ने कहा 'हमारा नाम आयेशा है।'
राजकुमार चुपरहे और उसका मुंह देखने लगे। इस व्यापार को अभी तक किसी ने नहीं देखा था।

आयेशा २२ वर्ष से ऊपर न थी किन्तु उस की सुन्दरता शब्दों द्वारा प्रकाश करना बड़ा कठिन है तिलोत्तम भी परम सुन्दर थी पर इसमें और उसमें बड़ा भेद था। तिलोत्तमा नवकलिका की भांति कोमल, संकुचित और निरमल स्वभाव योवन के रस से अज्ञात थी सुख पर उसके भोलापन चमकता था। नेत्र हाव भाव और कामकटाक्ष को जानते ही न थे शरीर का भी उसको अभी अच्छा ज्ञान न था बालापन प्रत्येक अङ्ग से टपकता था। पर आयेशा ऐसी न थी। वह प्रातकालीन नलिनी की भांति विकसित सुवासित और रसपरिपूर्ण थी। शरीर की आभा गृह को दीप्तमान करती थी। यदि विमला की तुलना इससे करें तो भी नहीं हो सकती क्योंकि वह सुन्दर तो अवश्य थी परन्तु गृहस्थी के कर्म करने से उसके हाथ पैर कठोर थे और शरीर भीतर से पोला था। थदि तिलोत्तमा के शरीर की प्रभा बालशशि की भांति थी तो बिमला की तैलाधीन दीपक के समान थी और आयेशा की मध्यान्ह पूर्व मार्त्तण्डरश्मि की भांति जिसपर पड़ती थी वह खिल उठता था।

जैसे उद्यान में पद्म का फूल शोभा देता है उसीप्रकार आयेशा से इस आख्यान की शोभा है। यदि कोई चित्रकार अपनी लेखनी लेकर इस अलेख रूपराशि का प्रतिबिम्ब उतारने की चेष्टा कर बैठता तो निश्चय है कि एक बेर उसको मूर्छा अवश्य आ जाती और ज्ञानशून्य हो जाता। पहिले तो उसको चम्पकरक्त और श्वेतवर्ण के अन्तर्गत शरीर के रङ्ग का रङ्ग कहां मिलता? फिर प्रशस्थ ललाट के लिखने के समय मन्मथ के रङ्ग भूमि का ध्यान न जमता मस्तक मध्य विलगित केश अर्ध चन्द्राकार जूड़ा पर्य्यन्त काकपक्ष की भांति कर्णदेश के ऊपर से घुमाने के समय हाथ अवश्य कांप जाता। निर्मल सुरसरिधार के निस्तृत स्थान से किञ्चित दूर पर बांकी भ्रूशैवाल के नीचे पलक पक्ष संचारित झख की जोड़ी प्रसन्नता पूर्वक खेलती हुई कदापि न बन सकती। उसके नीचे कीरबिम्ब फल के ऊपर बैठा हुआ कपोत की पीठ पर जिसके दोनों और दो भुजङ्ग हों केलि कर रहा हो और बीच में सिंहासन पर दो शालिग्राम की बटिया सरोवर के तीर पर धरी हों ऐसा रूप कब बन सकता है। सारांश जिसको बिधना ने स्वयं अनुपम बना दिया उसकी उपमा मनुष्य वापुरा क्या बना सकेगा। ऊपर की लाट बना कर अतिक्षीन लंक को ऊर्ध्व भार सहने के अयोग्य समझ उसने नीचे दो स्तंभ खड़े कर दिये जब भी चलते समय लच खाकर शरीर के दोहरा हो जाने का भय मन में लगा ही रहा। राजकुमार बहुत काल पर्यन्त आयेशा को देखते रहे और तिलोत्तमा का ध्यान आ गया और हृदय विदीर्ण होकर शरीर क्षत द्वारा रुधिर वेग से बहने लगा। फिर मूर्छा आई और उन्होंने आंख बन्द कर ली।

स्त्री जो पलङ्ग पर बैठी थी डर कर खड़ी हो गई और पुस्तक पाठ करनेवाला यवन उसके मुंह की ओर देखने लगा। वह उठकर धीरे २ यवन के समीप जाकर उसके कान में बोली—
'उसमान शीघ्र वैद्य के समीप किसीको भेजो।'
दुर्गजयी उसमान ही गलीचे पर बैठा था। आयेशा की बात सुनकर उठ गया।
आयेशा ने एक रूपे का बर्तन उठा उसमें से जलवत एक वस्तु लेकर राजपुत्र के मुख और मस्तक पर छिड़का।
उसमानखां भी शीघ्रही लौट आया और चिकित्सक को लेता आया। उसने अपनी बुद्धि के अनुसार यत्न कर लहू का बहना बन्द किया और अनेक औषध आयेशा के पास रख उनके

सेवन की विधि बताने लगा।
आयेशा ने धीरे से पूछा 'अब क्या बोध होता है?'
भिषक ने कहा-'ज्वर बहुत है।'
वैद्य को जाते देख उसमान ने द्वार पर जाकर उसके कान में कहा 'बचने की आशा है कि नहीं?"
भिषक ने उत्तर दिया "लक्षण तो नहीं है पर ईश्वर की गति जानी नहीं जाती जब फिर कोई विशेष क्लेश हो तो हम को बुला लेना।"

दूसरा परिच्छेद : पाषाण संयुक्त कुसुम

उस दिन आयेशा और उसमान बड़ी रात तक जगतसिंह के समीप बैठे थे। कभी उनको चेत होजाता था और कभी मूर्छा आ जाती थी। भिषक भी कई बेर आए और गए आयेशा चित्त लगाकर राजकुमार की सेवा करती थी जब आधी रात हुई एक परिचारिका ने आकर कहा "बेगम तुम को बुलाती हैं।'

'अच्छा जाती हूं' कह कर आयेशा उठी। उसमान भी उठे। आयेशा ने पूछा 'तुम क्यों उठे?'
उसने कहा 'रात बहुत गई है चलो तुमको पहुंचाय आयें।
आयेशा दास दासी को सावधान रहने की आज्ञा दे माता के घर चली। मार्ग में उसमान ने पूछा 'आज क्या तुम बेगम के पास रहोगी?'
आयेशा ने कहा 'नहीं मैं अभी राजपुत्र के पास लौट आऊंगी।' उसमान ने कहा 'आयेशा, तुम्हारे गुण का बखान मैं क्या करूं तुम इस परम शत्रु के ऊपर इतनी दया प्रकाश करती हो कि बहिन भाई पर न करेगी। तुम ने मानो इसको प्राण दान दिया।

आयेशा हँसने लगी और बोली 'उसमान' मेरा तो यह स्वभाव है। दुखी की सेवा करना तो मेरा धर्म है, यदि न करूं तो दोष है और करने में कुछ प्रशंसा नहीं। किन्तु तुम्हारा तो वह शत्रु हैं रण में तुम्हारे उसके परामर्ष हुआ था और तुम्ही ने उसकी यह दशा की है तुम उस पर इतनी कृपा करते हो तुम्हारी निस्सन्देह प्रशंसा है।'

उसमान ने कहा 'आयेशा, तुम अपने सुन्दर स्वभाव के कारण सब को समान समझती हो। मेरा अभिप्राय वैसा नहीं है, तुम नहीं जानती हो कि जगतसिंह की रक्षा से हमलोगों को कितना लाभ है उनकी मृत्यु से हमारी हानि हैं। कुछ मानसिंह लड़ाई में जगतसिंह से कम नहीं हैं। एक योद्धा नहीं दूसरा आवेगा किन्तु जगतसिंह यदि जीता हमारे हाथ में रहे तो मानसिंह को अपनाते कितनी देर है। वह अपने पुत्र के छुड़ाने की लालसा से अवश्य संधि करेगा और अकबरशाह भी ऐसे वीर सेनापति के छुड़ाने की इच्छा करेंगे। और यदि स्वयं जगतसिंह को हमलोग अपने हितसत्कार द्वारा बाधित कर सकें तो वह कृतज्ञता पालन पूर्वक हमारे मन का मेल करा देगा, उसके किये यह होसक्ता है। यदि और कुछ न हो तो मानसिंह अपने पुत्र के छोड़ाने के लिये रूपया बहुत देगा। एक दिन की विजय की अपेक्षा जगतसिंह का जीता रहना विशेष उपकार कारक है।'

उसमान ऊर्ध्व लिखित बातों को सोच बिचार तन मन से राजकुमार के पुनर्जीवन का उद्योग करता था किसी २ का ऐसा भी स्वभाव होता है कि यदि लोग उनको दयावन्त कहें तो लज्जा आती है अतएव बाहर से कठिनता धारण किये रहते हैं। उसमान का भी ऐसा ही स्वभाव देख आयेशा हँस कर बोली 'उसमान! यदि सब का चित्त तुम्हारे ऐसा होता तो फिर धर्म का कुछ काम न था'।
उसमान इधर उधर की बातें कर बोला 'आयेशा। अब तो मुझ से रहा नहीं जाता, कब तक लव लगाये रहूं?'

आयेशा के मुंह पर गम्भीरता आ गयी। उसमान उसकी ओर देखने लगा। उसने कहा 'उसमान हम तुम भाई बहिन की भांति एक स्थान पर उठते बैठते हैं यदि तुम्हारे मन में कुछ और है तो अब मैं तुम्हारे सामने निकलूंगी भी नहीं। उसमान का मुंह मलीन होगया और बोला।'

'हे करतार! क्या तूने इस कोमल कुसुम शरीर को पाषाण हृदय संयुक्त बनाया है!' और आयेशा को माता के गृह पहुंचाय उदास मन अपने घर को लौट आया और जगतसिंह? बिषम ज्वर में पड़े शय्या पर भुगत रहे हैं।

तीसरा परिच्छेद : तुम तिलोत्तमा नहीं हो?

दूसरे दिन सन्ध्या को जगतसिंह की कोठरी में उसमान और चिकित्सक चुपचाप बैठे थे आयेशा पलङ्ग पर बैठी हाथ से पंखा झल रही थी। चिकित्सक नाड़ी देख रहा था और जगतसिंह अचेत पड़े थे। चिकित्सक ने कहा 'आज की रात ज्वर उतरने पर यदि प्राण बच जाय तो फिर कुछ चिन्ता नहीं। अब वह समय आता जाता है।'

सब का मन ब्यग्र हो रहा था, चिकित्सक भी बार २ नाड़ी देखता था और 'अब नाड़ी बहुत सुस्त चलती है' 'अब तो कहीं मिलती ही नहीं' 'देखो यह चल रही है' कहता था। एकाएक उसका मुंह श्याम होगया और बोला 'देखो अब समय आ गया।'
आयेशा और उसमान कान लगाकर सुनते थे और भिषक नाड़ी पकड़े बैठा था।

थोड़ी देर बाद वैद्य ने कहा 'नाड़ी बहुत धीमी चलती है' आयेशा का मुंह और सूख गया और जगतसिंह के मुंह की भी आकृति बिगड़ चली बरन कुछ टेढ़ापन भी आ गया और स्वेतता छा गयी, हाथों की मुट्ठी बन्ध गयी आंखैं घूम गयीं। आयेशा से जाना कि अब कुछ आशा नहीं, काल आन पहुंचा। चिकित्सक हाथ में एक शीशी लिये बैठा था जगतसिंह की इस अवस्था को देख उनका मुंह चीर औषधी भीतर डाल दी किन्तु वह ओठों द्वारा निकल पड़ी कुछ थोड़ीसी पेट में गयी। दवा ने भीतर जातेही अपना प्रभाव दिखाया, शरीर का रङ्ग पलटने लगा स्वेतता जाती रही, रक्त का संचार होने लगा, हाथ की मुट्ठी खुल गई और आंख भी खुलने लगी। हकीम ने फिर नाड़ी देखी और किंचितकाल के अनन्तर हर्षयुत बोला 'अब कुछ भय नहीं अब काल टल गया।'

उसमान ने पूछा 'ज्वर उतर गया?'
भिषक ने कहा 'हां।'
आयेशा और उसमान दोनों इस बात को सुन कर प्रसन्न हुए?

भिषक ने कहा 'अब किसी बात की चिंता नहीं है मैं जाता हूं इस औषध को आधी रात तक देते जाना' और आप चला गया उसमान भी अपने घर चला गया केवल आयेशा पलङ्ग पर

बैठी जगतसिंह की सेवा कर रही थी।

आधी रात के किंचित् पूर्व राजकुमार ने नेत्र खोला और आयेशा और उनकी चार आंखें हुईं। उस समय आयेशा को राजकुमार की चेष्टा देख बोध हुआ कि वे किसी वस्तु का स्मरण कर रहे हैं परन्तु श्रम निष्फल होता है। आयेशा की ओर किंचित्काल देख कर बोले 'मैं कहां हूं?' दो दिन में यही शब्द पहिले पहिल उनके मुंह से निकला।
आयेशा ने कहा 'कतलूखां के दुर्ग में'।
राजकुमार फिर कुछ स्मरण करने लगे और बोले 'मैं यहां कैसे आया?
पहिले आयेशा चुप हो रही फिर बोली ' आए पीड़ित जो हैं।' राजकुमार ने लक्षण समझ सिर को हिला कर कहा 'नहीं नहीं बन्दी हूं।' और चहरे का रङ्ग पलट गया।
आयेशा ने कुछ उत्तर न दिया।
फिर राजपुत्र बोले 'तुम कौन हो?'
'मेरा नाम आयेशा है।'
'आयेशा कौन?'
'कतलू खां की बेटी।'
राजपुत्र फिर चुप रह गए क्योंकि अभी उनको इतनी शक्ति तो थी ही नहीं स्वासा चलने लगी। जब फिर कुछ स्थिरता आई तो बोले 'हमको इस स्थान पर कै दिन हुए?'
'चार दिन।'
'मन्दारणगढ़ अभी तुम्हारे अधिकार में है?'
'हां है।'
फिर जगतसिंह का दम फुलने लगा और कुछ थम कर बोले-'बीरेन्द्रसिंह की क्या दशा हुई?'
'बीरेन्द्रसिंह कारागार में हैं आज उनका विचार होगा।'
जगतसिंह के मुंह पर और भी उदासी छा गई पूछा 'और २ परिजनों की क्या गति हुई?'
आयेशा उकता कर कहने लगी 'मैं सम्पूर्ण समाचार नहीं जानती।'
राजपुत्र अपने मन में सोचने लगे और उनके मुंह से एक नाम निकला आयेशा ने उसको सुन लिया-'तिलोत्तमा।'
आयेशा उठकर औषध लेने गई उस समय की शोभा युवराज के मन में बस गयी और वे

उसी की ओर देखने लगे। उसने औषध लाकर दिया और राजपुत्र ने पान करके कहा—
'मैंने स्वप्न में देखा है कि स्वर्गीय देवकन्या मेरे सिरहाने बैठी शुश्रूषा कर रही है वह तुम्ही हो न तिलोत्तमा?'
आयेशा ने कहा 'आपने तिलोत्तमा को स्वप्न में देखा होगा।'

चौथा परिच्छेद : घूंघटवाली

दुर्ग जय करने के दूसरे दिन पहर दिन चढ़े कतलूखां का 'दरबार' हुआ। पारिषद लोग श्रेणीबद्ध दोनों ओर खड़े थे और सामने शतश: मनुष्य चुपचाप देख रहे थे। आज बीरेन्द्र सिंह का विचार होनेवाला है।

कई सिपाही अस्त्र बांधे बीरेन्द्रसिंह के हाथ में हथकड़ी और पैर मैं बेड़ी डाले उपस्थित हुए। यद्यपि उनका शरीर रक्त वर्ण हो रहा था पर मुंह पर भय का कोई चिन्ह नहीं था। आंखों से आग बरसती थी नाक का सिरा फरफराता था और दांत ओठों को खाये जाते थे।
बीरेन्द्रसिंह को देख कतलू खां ने पूछा 'बीरेन्द्रसिंह! आज मैं तुम्हारे अपराध का विचार करने बैठा हूं बताओ तुमने हमसे बिरोध क्यों किया?'

बीरेन्द्रसिंह ने क्रोध करके कहा 'पहिले तुम यह तो बतलाओ कि हम ने क्या विरोध किया'।
एक पारिषद ने कहा 'विनीत भाव से बात करो'।
कतलू खां ने कहा 'तुमने क्यों हमारी आज्ञा के अनुसार हमको द्रव्य और सेना नहीं भेजी?'
बीरेन्द्रसिंह ने नि:शंक कहा 'तुम राजद्रोही लुटेरों को हम क्यों द्रव्य दें? और सेना दें?'
कतलू खां का कलेवर कोप से कांपने लगा किन्तु रोष को रोक कर बोला 'तुम ने हमारे अधिकार में रह कर मोगलियों से क्यों मेल किया?'
बीरेन्द्रसिंह ने कहा 'तुम्हारा अधिकार कहां है?'
कतलू खां को और कोप हुआ 'सुनरे दुष्ट जैसा तूने किया है वैसा भोगेगा। अभी तो तेरे जीने की आशा थी पर तू ने अपने हाथ से वह बिगाड़ा।'

बीरेन्द्रसिंह गर्व पूर्वक हंस कर बोले कतलू खां—मैं हाथ पैर बंधा कर तुम्हारे समीप दया की

आशा कर के नहीं आया हूं जिस का जीवन तुम्हारी दया के आधीन है उसका जीनाही क्या? यदि तुम केवल मेराही प्राण ले कर सन्तुष्ट होते तब भी मैं तुमको आशीर्वाद देता परन्तु तुमने तो हमारे कुल का नाश कर डाला और प्राण से भी अधिक तुमने हमारे बीरेन्द्रसिंह के मुंह से और बात नहीं निकली कंठ रूंध गया आंखों से पानी बहने लगा। भय हीन दाम्भिक बीरेन्द्रसिंह सिर नीचे करके रोने लगे।

कतलू खां तो सहज निठुर था। वरन उसको परायः दुख देख कर उल्लास होता था बीरेन्द्रसिंह को इस अवस्था में देखकर उसको हंसी आयी और बोला 'बीरेन्द्रसिंह! कुछ मांगना हो तो मांग लो अब तुम्हारी घड़ी आगयी। रोते २ बीरेन्द्रसिंह की छाती कुछ ठंढी हुई और बोले 'मुझको और कुछ न चाहिये अब शीघ्र मेरे बध की आज्ञा दीजिये।'
क· — 'यह तो होगाही और कुछ?'
'अब इस जन्म और कुछ न चाहिये।'
'मरती समय अपनी कन्या से भेंट नहीं करोगे?'

इस शब्द को सुन कर बीरेन्द्र सिंह के हृदय पर नया घाव लगा। 'यदि हमारी कन्या तुम्हारे घर में जीती है तो उसको न देखूंगा और यदि मरगयी हो तो लाओ उसको गोद में लेकर मरूं।' दर्शकगण चुपचाप दांत तले उंगली दबाये इस कौतुक को देख रहे थे।

नवाब की आज्ञा पाय 'रक्षक बीरेन्द्रसिंह को बध भूमि की ओर ले चले। मार्ग में एक मुसलमान ने बीरेन्द्रसिंह के कान में कुछ कहा परंतु उन्होंने सुना नहीं तब एक पत्र उनके हाथ में दिया। उसको खोल कर उन्होंने देखा कि बिमला का लिखा है और मींज मांजकर फेक दिया उस मुसलमान ने उसको उठा लिया और चला गया। निकटवर्ती एक दर्शक ने अपने एक मित्र से धीरे से कहा 'जान पड़ता है यह पत्र इसकी कन्या का है।'
बीरेन्द्रसिंह इस बात को सुन उसकी ओर फिर कर बोले 'कौन कहता है कि हमारी कन्या है? हमारी कन्या नहीं है।'
पत्रवाहक ने पत्र ले जाते समय रक्षकों से कहा था जब तक हम न आवें तुम यहीं ठहरे रहना।

उन्होंने उत्तर दिया 'अच्छा सरकार।'
यह मनुष्य उसमान था इसी लिये रक्षकों ने सरकार कहा।

उसमान हाथ में चिट्ठी लिये चार दीवारी के समीप गया। उस स्थान पर एक वृक्ष के नांचे घूंघट काढ़े एक स्त्री बैठी थी। उसके समीप पहुंच कर उसमान ने सब वृत्तांत कह सुनाया। घूंघटवाली ने कहा 'आपको क्लेश तो बहुत होता है पर हम लोगों की यह दशा आपही के कारण हुई है। आप को फिर यह काम करना पड़ेगा' उसमान चुप रह गया।
घूंघटबाली ने रोकर कहा 'न करोगे न सही। अब तो मैं अनाथ हो गयी केवल ईश्वर रक्षा करनेवाला है।

उसमान ने कहा 'माता! तुम नहीं जानती हो। यह काम बड़ा कठिन है। यदि कतलू खां सुन पावे तो मरवा डाले'! स्त्री ने कहा 'कतलू खां— क्यों हमको डराते हो। उसकी सामर्थ नहीं जो तुम्हारा बाल बांका कर सके।'
उ॰— तुम कतलू खां को चीन्हती नहीं हो? अच्छा चलो हम तुम को बध भूमि में ले चलें।
उसमान के पीछे २ स्त्री बध भूमि में जाकर चुपचाप खड़ी हुई। बीरेन्द्रसिंह एक भिखारी ब्राह्मण से बात कर रहे थे इस्से इसको नहीं देखा। घूंघटवाली ने घूंघट हटा कर देखा तो वह ब्राह्मण अभिराम स्वामी था।
बीरेन्द्रसिंह ने अभिराम स्वामी से कहा 'गुरुदेव अब मैं बिदा होता हूं। और मैं आप से क्या कहूँ इस लोक में अब मुझको और कुछ न चाहिये।'
अभिराम स्वामी ने उंगली से पीछे खड़ी घूंघटवाली स्त्री को दिखाया। बीरेन्द्रसिंह ने मुंह फेर कर देखा और घूंघटवाली झपट घूंघट हटा बेड़ी बद्ध बीरेन्द्रसिंह के चरण पर गिर पड़ी। बीरेन्द्रसिंह ने गदगद स्वर से पुकारा 'बिमला।'
किन्तु बिमला रोने लगी।
'हे प्राणनाथ! हे स्वामी? हे राजन्! अब मैं कहां जाऊं। स्वामी मुझको छोड़कर तुम कहां चले ? मुझको किसको सौंपे जाते हो। हा प्रभू।'
बीरेन्द्रसिंह की आंखों से भी आंसू गिरने लगे। हाथ पकड़ कर बिमला को उठा लिया और बोले 'प्यारी? प्राणेश्वरी! क्यों तू मुझको रोलाती है। शत्रु देख कर मुझको कायर समझेंगे।'

विमला चुप रही। बीरेन्द्रसिंह ने फिर कहा 'बिमला। मैं तो अब जाता हूं तुम लोग मेरे पीछे आना।'

विमला ने कहा ' आऊंगी तो।' (और धीरे से जिसमें और लोग न सुनें) आऊंगी तो परंतु इस दुख का प्रतिशोध करके आऊंगी।'

बीरेन्द्रसिंह का मुखमंडल दीप्तमान हो गया आर बोले 'हां!' बिमला ने दहना हाथ दिखला कर कहा 'इस हाथ का कंकण भी मैंने उतार दिया अब उसका क्या काम है, अब इस को केवल अस्त्र, छूरी आदि भूषण पहिराऊंगी।'

बीरेन्द्रसिंह ने प्रसन्न होकर कहा 'ईश्वर तेरी मनोकामना पूरी करें।'

इतने में जल्लाद ने चिल्ला कर कहा अब 'मैं नहीं ठहर सक्ता।'

बीरेन्द्रसिंह ने बिमला से कहा 'बस अब तुम जाओ।'

बिमला ने कहा 'नहीं, मैं अपनी आंखों से देख लूंगी आज मैं तुम्हारे रुधिर से अपने लाज संकोच को धो डालूंगी।'

'अच्छा जैसी तेरी इच्छा' कहकर बीरेन्द्रसिंह ने जल्लादों को संकेत किया। बिमला देखती रही इतने में ऊपर से कठिन कुठार गिरा और बीरेन्द्रसिंह का सिर भूलोटन कबूतर की भांति पृथ्वी पर लोटने लगा। वह चित्र लिखित क ीसी खड़ी रही न तो उसके आंखों में आंसू आए और न मुंह का रंग पलटा यहां तक कि पलक भी नहीं गिरती थी।

पांचवां परिच्छेद : विधवा

तिलोत्तमा क्या हुई? वह पिता हीन अनाथ कन्या क्या हुई? बिमला भी क्या हुई? कहां से आकर उसने बध भूमि में अपने स्वामी का मरण देखा था? और फिर कहां गयी?

बीरेन्द्रसिंह ने मरते समय अपनी प्रिय कन्या को क्यों नहीं देखा वरन नाम लेते क्रोध के मारे शरीर कांपने लगा? और 'हमारी कन्या नहीं है' कहने का क्या प्रयोजन था? बिमला के पत्र को बिना पढ़े क्यों फेंक दिया?

कतलूखां के सामने बीरेन्द्रसिंह ने जो तिरस्कार किया था उसका स्मरण करो— 'तुम ने

मेरे उज्वल कुल में कालिमा लगायी, तिलोत्तमा और बिमला दोनों कतलूखां के उपपत्नी ग्रह में मिलेंगी। संसार की यही गति है! विधना की करतूत ऐसी ही है! रूप, यौवन, सरलता अमलता इत्यादि सब कालचक्र के नीचे पड़कर नष्ट हो जाते हैं।

कतलूखां का नियम था कि जब कोई दुर्ग वा ग्राम पराजय होता था यदि उसमें कोई यौवनवती मनमोहनी पकड़ी जाती तो वह उसकी सेवा में भेजी जाती थी। मान्दारणगढ़ के जय होने के दूसरे दिन कतलूखां ने वहां जाकर बन्दीजनों को यथायोग्य आज्ञा दी और उनकी रक्षा के निमित्त सेना नियोजित की। बिमला और तिलोत्तमा को अपने 'हाथ' में ले आने की आज्ञा दी। इसके अनन्तर और और कामों में लगा रहा। उसने यह सुना था कि राजपूत सेना अपने सेनप जगतसिंह के बन्दी होने का समाचार सुन कहीं आस पास आक्रमण करने के उद्योग में है अतएव तद्विषय उचित प्रबन्ध करने लगा और इसी कारण उसको अपने नवप्राप्त दासी की सेवा के स्वाद लेने का समय नहीं मिला।

बिमला और तिलोत्तमा दोनों दो स्थान पर रक्खी गयीं जिस स्थान में पिताहीन तिलोत्तमा अपने हेमबरण शरीर को धूलिधूसरित कर रही थी उसके देखने की चेष्टा पाठकों के मन में कदापि न होगी क्योंकि बने २ के तो सब साथी होते हैं बिगड़े पर कोई बात नहीं पूछता! बसन्त ऋतु में बारिसंचारित सुन्दर सुगंधमय नवलता को हिलते हुए देख किसका मन नहीं चलायमान होता? वही लता जब किसी आंधी के कारण अपने आधार वृक्ष समेत भूमि पर गिर पड़ती है तो वृक्ष को सबलोग देखते हैं लता को कोई नहीं देखता। लकड़हारे लकड़ी काट लेजाते हैं और वह लता पैरों के नीचे कुचल जाती है।
अब जहां चपल, चतुर, रसिक, दुःखी किन्तु धीरधारी मलिन रूप बनाये बिमला बैठी है वहां चलो।

क्या यही बिमला ! यह क्या दशा हुई, माथे में धूलि भरी है। वह बनारसी दुपट्टा क्या हुआ? वह कारचोबी अंगिया भी तो नहीं है। बस्त्र भी मैला हो गया है और कई स्थान पर फटा भी है। शरीर पर कोई आभरण भी नहीं है। आंखें फूल आई हैं। वह कटाक्ष भी नहीं है। मस्तक में घाव कैसा है? रुधिर बह रहा है।

बिमला उसमान की परीक्षा लेती है।

पठान कुल तिलक उसमान सर्वदा युद्ध को अपना साधन और धर्म समझता था और जय सिध्यर्थ कोई उपाय उठा नहीं धरता था किन्तु पराजितों पर निष्प्रयोजन किसी प्रकार का अत्याचार नहीं होने देता था। यदि कतलूखां स्वयं बिमला और तिलोत्तमा के पीछे न पड़ता तो उसमान उनको किसी प्रकार बन्दी न होने देता। उसी की कृपा से बिमला ने अपने मरते स्वामी का मुंह देखने पाया था और जब उसने जाना कि वह बीरेन्द्रसिंह की स्त्री है उस दिन से और भी दया करने लगा?

उसमान कतलूखां का भतीजा था इसलिये वह अन्तःपुर इत्यादि सब स्थानों में जासक्ता था! जहां कतलूखां का बिहारगृह था वहां उसका पुत्र भी नहीं जासक्ता था और उसमान भी नहीं जा सकता था किन्तु उसमान कतलूखां का दहिना हाथ था उसी के पराक्रम से उडिस्सा अधिकार दामोदर नदी पर्यन्त पहुंचा, अतएव पुरजन सब उसको कतलूखां के समान जानते और मानते थे।
इसीलिये आज प्रातःकाल बिमला के प्रार्थनानुसार, मरते समय उस्से उसके पतिसे साक्षात हुआ।
बिमला ने अपने बिधवा होनेके दूसरे दिन जो कुछ अलंकार उसके पास था उसने उतार कर कतलूखां नियोजित दासी को दे दिया।
दासी ने पूछा 'मुझको क्या आज्ञा होती है'।

बिमला ने कहा 'जैसे तू कल उसमान के पास गई थी उसी प्रकार एक बेर और जाओ, कहा कि मैं उनको देखा चाहती हूं। और यह भी कहना कि इस बेर से बस अब तीसरी बार क्लेश न दूंगी।'
दासी ने जाकर वैसाही कहा। उसमान ने कहला भेजा उस महल में हमारे जाने से दोनों की हानि है, उनसे कहो कि हमारे घर आवें।
बिमला ने पूछा 'मैं जाऊंगी कैसे?' दासी ने उत्तर दिया कि उन्होंने कहा है 'मैं उपाय कर दूंगा!'

सन्ध्या समय आयेशा की एक दासी आकर प्रहरी से कुछ कह बिमला को उसमान के समीप ले चली।

उसमान ने कहा 'मैं तुम्हारा और कोई उपकार कर सक्ता हूं?'

बिमला ने कहा एक छोटीसी बात है 'राजकुमार जगतसिंह अभी जीते हैं?'

उ।— हां जीते हैं।

बि।— स्वाधीन हैं कि बन्दी?

उ।— बन्दी तो हैं पर अभी कारागार में नहीं गए हैं।

उनके शरीर में अस्त्रों के घाव बहुत हैं इसलिये अभी चिकित्सालय में हैं।

बिमला ने सुनकर कहा 'सब अमंगलही है। भाग्य को क्या करें! जब राजपुत्र आरोग्य हो जाय मेरी यह याचना है कि यह पत्र उनको दे देना अभी अपने पास रक्खो।'

उसमान ने पत्र फेर कर कहा 'यह काम हमारे योग्य नहीं है। राजपुत्र चाहे किसी अवस्था में हों बन्दी तो है। बन्दियों के पास बिना पढ़े हम लोग कोई पत्र नहीं जाने देते और स्वामी की आज्ञा भी ऐसी ही है।'

बिमला ने कहा, इसमें कुछ आप की निन्दा स्तुति नहीं लिखी है आप संशय न करें। और स्वामी की आज्ञा? स्वामी तो आपही हैं।'

उसमान ने कहा 'और २ कामों में तो मैं पिता के बिरुद्ध कर भी सक्ता हूं पर ऐसे विषयों में कुछ नहीं कर सक्ता। तुम्हारा कहना है कि इस पत्र में कोई बुरी बात नहीं लिखी है मैं मानता हूं पर नियम बिरुद्ध नहीं कर सकता। मुझ से यह काम न होगा।

बिमला ने उदास होकर कहा 'अच्छा तो पढ़कर दे देना।'

उसमान ने पत्र ले लिया और पढ़ने लगे।

छठवां परिछेद : बिमला का पत्र

'युवराज! मैं ने बचन दिया था कि एक दिन पता बताऊंगी। आज वह दिन आगया, मैंने स्थिर किया था कि तिलोत्तमा को राजसिंहासन पर बैठा कर पता बताती पर वह न होने पाया अब तो यह बोध होता है कि कुछ दिन में सुन्ने में आवेगा कि तिलोत्तमा भी एक थी और उसके सङ्ग बिमला भी कोई थी इसीलिये आपको यह पत्र लिखती हूँ। मैं बड़ी पापिन हूं मैंने अनेक अनुचित कर्म किये हैं। जब मैं मर जाऊंगी लोग निन्दा करेंगे और मुझ को

अपवादक कहेंगे उस समय कौन मुझको कलंकशून्य सिद्ध करेगा? ऐसा कौन हितकारी है? हां एक है और वह थोड़ेही दिनों में इस लोक को त्याग परलोक को सिधारेगा, अभिराम स्वामी से मैं उरिन नहीं हो सकी। मैंने विचारा था कि एक दिन आपकी दासियों में मैं भी हूंगी। आपने भी एक दिन हमारे निजों की भांति काम किया है। हा! मैं यह बात किस्से कह रही हूं? अभागिनियों के दुर्भाग्य ने संपूर्ण हितकारियों का नाश कर डाला। जो हो आप हमारी इस बात का स्मरण रखना। जब लोग हमको कुलटा और गणिका कहेंगे तो आप कहियेगा कि बिमला नीच थी, अभागिन थी किन्तु गणिका नहीं थी। जिनका अभी परलोक हुआ है उनके साथ इस दासी का शास्त्रनियमानुसार पाणिग्रहण हुआ था। बिमला विश्वासघातिनी नहीं है।

अद्यपर्यन्त यह बातें छिपी थीं आज इसको कौन पतियाता है? यदि पत्नी थी तो दासी का काम क्यों करती थी? सुनिये मान्दारणगढ़ के समीपवर्ती एक ग्राम में शशिशेखर भट्टाचार्य रहते थे। युवा अवस्था में उन्होंने रीत्यानुसार विद्याध्ययन किया किन्तु इस्से उनका स्वाभाविक दोष दूर नहीं हुआ। और सब गुण उनमें बहुत अच्छे थे केवल एक दोष था किन्तु वह तो जवानी का दोष था।

मान्दारणगढ़ के जयधरसिंह के एक सेवक की स्त्री बड़ी सुन्दर थी। स्वामी उसका सेना में सिपाही था इस कारण प्रायः बाहर रहा करता था। शशिशेखर की आंख उसपर पड़ी थोड़ेही दिनों में उसका पैर भर आया।

अग्नि और पाप दोनों छिप नहीं सक्ते यह बात शशिशेखर के बाप के कान तक पहुंची। उन्होंने कुलकलंक के छुड़ाने के लिये उस स्त्री के स्वामी को तुरन्त बुलवा भेजा और अपने पुत्र का उचित शासन किया। इस अपमान के कारण शशिशेखर उदास होकर घर से चल दिये और काशी में पहुंचे। वहां एक महान पण्डित का नाम सुन उन्हीं के पास पढ़ने लगे। वेद में अच्छे थे ज्योतिष में भी बहुत बढ़े, अध्यापक का भी मन पढ़ाने में लगने लगा।

शशिशेखर एक शूद्री के गृह के समीप रहते थे उसको एक जवान कन्या थी वह प्रायः

भट्टाचार्य महाराज की सेवा में रहा करती थी उस को इनसे गर्भ रह गया और मेरा जन्म हुआ। सुनतेही गुरु ने कहा 'शिष्य! मेरे यहां पापियों का काम नहीं है। जाओ अब काशी में मुंह न दिखलाना।
शशिशेखर लज्जा के मारे काशी से चल दिये और मेरी माता को भी घर से निकाल दिया।

बेचारी मुझको लेकर एक मड़ैया में रहने लगी और मजूरी करके पेट पालती थी। कोई बात नहीं पूछता था। पिता का भी कुछ समाचार नहीं मिला। कई वर्ष के अनन्तर एक धनी पठान बंगदेश से दिल्ली जाते समय काशी में उतरा था रात के कारण कहीं टिकने को स्थान नहीं मिलता था। उसके सङ्ग में उसकी स्त्री और एक छोटासा बालक भी था। उन्होंने हमारी मां की मड़ैया के समीप आकर निवेदन करके रात के टिकने की आशा मांगी। पठान के सङ्ग एक सेवक भी था। माता मेरी दरिद्र तो थी पर दयालु भी थी। धन की लालच से या जैसे हो उसने उनको स्थान दिया और एक ओर दीप जला कर पठान और उसके साथी लेटे।
उन दिनों काशी में लड़के बहुत चोरी जाते थे। मैं छः वर्ष की थी मुझको सुध नहीं है किन्तु माता के मुंह से जैसा सुना है कहती हूं।

रात को दीप जल रहा था कि एक चोर सेन देकर पठान के बालक को ले चला। मेरी आंख खुली और मैंने चोर को देखा। उसको बालक ले जाते देख मैं चिल्लाई और सब जाग पड़े।

पठान की स्त्री ने देखा कि शय्या पर बालक नहीं है और चिल्लाने लगी। चोर उस समय चारपाई के नीचे था पठान ने उसका बाल पकड़ कर खींच लिया। जब चोर ने बहुत बिन्ती की तो उन्होंने तरवार से उसके कान में छेद करके छोड़ दिया।

यहां तक पढ़ कर उसमान में विमला ने पूछा 'तुम्हारा कभी और भी कोई नाम था?'
विमला ने कहा हां था पर वह मुसलमानी नाम था इसलिये पिताने दूसरा नाम रक्खा।
'वह नाम क्या था? माहरू!'
विमला ने विस्मित होकर कहा 'आप कैसे जानते हैं?'

उसमान ने कहा 'मैं वही बालक हूं जिसको चोर लिये जाता था।'
विमला को बड़ा आश्चर्य हुआ उसमान फिर पत्र पढ़ने लगे।

दूसरे दिन जाते समय पठान ने माता से कहा 'तुम्हारी कन्या ने जैसा मेरा उपकार किया है उसके प्रति उपकार करने की हम को सामर्थ नहीं है। परन्तु तुमको यदि कोई वस्तु चाहती हो तो मुझ से कहो मैं दिल्ली जाता हूं वहां से भेज दूंगा यदि द्रव्य चाहिये तो वह भी भेज सक्ता हूँ।
माता ने कहा 'मुझको धन नहीं चाहिये। मेरी मजूरी मुझको अच्छी है। किन्तु यदि आपकी पहुंच जहाँपनाह तक हो तो —'
बात पूरी नहीं होने पाई कि पठान ने कहा 'हां ठीक है मैं राजदरबार में तुम्हारा काम कर सक्ता हूं'।
माता ने कहा 'तो वहां इस कन्या के बाप का पता लगा कर मुझको लिख भेजियेगा'।

पठान ने हुंकारी भरी और एक अशरफी निकाल कर माता के हाथ धरी और उसने ले लिया। अपने कहने के अनुसार उसने वहां जाकर पिता की खोज में बहुतेरे राजपूत भेजे पर कहीं पता न लगा।

चौदह वर्ष के अनन्तर राजपूतों ने लिखा कि पिता दिल्ली में हैं शशिशेखर नाम छोड़ कर अभिराम स्वामि नाम रक्खा है। जब यह सम्बाद आया माता मेरी मर चुकी थी।

यह सम्बाद सुन कर फिर मुझ से काशी में न रहा गया। कुल भर में मेरे केवल पिता जीते थे और सो भी दिल्ली में, तो मैं काशी में क्या करती। अतएव मैं अकेली पिता के पास चली गई। पिता मुझको देखकर पहिले रूखे हुए परन्तु जब मैं बहुत रोई गाई तब मुझको दासी हो के रहने की आज्ञा दी और माहरू नाम छोड़ विमला नाम रक्खा। मैं पिता के घर में रह कर रात दिन उनकी सेवा में लगी रहती थी और जिस प्रकार वह प्रसन्न रहते वही काम करती थी। पिता भी मेरी सेवा देख कर स्नेह करने लगे।

सातवां परिच्छेद : बिमला के पत्र की पूर्ति

'मैं कह चुकी हूं कि मान्दारणगढ़ के एक नीच स्त्री को मेरे पिता से गर्भ रह गया और उसको एक कन्या उत्पन्न हुई थोड़े ही दिनों में वह भी विधवा हो गयी और मेहनत मजूरी करके अपना और कन्या का पालन करती थी। इस कन्या के समान मान्दारणगढ़ में दूसरी रूपवती स्त्री न थी। काल पा कर उसका कलंक भी दूर होगया, जारजा का नाम भी मिट गया और उसके उदर में तिलोत्तमा का उद्‌भव हुआ!

वह जिस समय पेट में थी मेरे मनमें उसके विवाह के कारण चिन्ता उत्पन्न हुई। उसी समय एक दिन पिता अपने जामाता को साथ लेकर आए और मुझको पहिचनवा दिया उसी दिन से मैं उनको जानने लगी।

जब से मैंने प्राणेश्वर को देखा उसी दिन से परवश हो गयी वे प्रतिदिन पिता के समीप आया जाया करते थे और बैठते भी थे और बातचीत करते थे। मैं चुपचाप उनकी बातें सुना करती थी और मनसा वाचा से अपने को उनकी दासी समझी, वे भी मुझसे घृणा नहीं करते थे। अर्थात् दोनो ओर से आकर्षण होने लगा और मैं उनसे बोली। उन्होंने भी जो बात मेरे कान में कही वह मुझको आज पर्यन्त स्मरण है।

बिना मूल्य उनके हाथ बिक गयी, किन्तु माता की दुर्दशा मुझको भूलती न थी और मैंने अपना धर्म नहीं डगाया, पर इस्से उनका प्रेम कुछ कम नहीं हुआ। पिता को भी यह बातें ज्ञात हुंई। एक दिन दोनों बात कर रहे थे मैंने एक शब्द सुना।
पिता ने कहा 'मैं विमला को छोड़ नहीं सक्ता किन्तु यदि वह तुम्हारी पत्नी हो तो मुझको अंगीकार है पर जो तुम्हारे मन में यह बात न हो—'
पिता की बात पूरी नहीं होने पाई कि 'उन्ने' रोष करके कहा 'शूद्री कन्या को मैं कैसे विवाह सक्ता हूं?'
पिता ने कहा 'जारजा कन्या से कैसे विवाह किया था?'

प्राण प्रीतम ने कहा, उस समय मैं इसबात को नहीं जानता था जान बूझ कर कोई शूद्री की

कन्या विवाह करता है? और आपकी पुत्री जारजा भी हो तो शूद्री नहीं हो सक्ती।'

पिताने कहा 'तुमने विवाह अस्वीकृत किया तो बहुत अच्छा तुम्हारे आने जाने से विमला को दुःख होता है अतएव अब यहां तुम्हारे आने का कुछ प्रयोजन नहीं। हमीं तुम्हारे घर पर आया करेंगे।'

उस दिन से उन्होंने आना जाना बन्द कर दिया। किन्तु मैं चातकी की भांति उनकी राह देखा करती थी उनसे भी न रहा गया और फिर आने जाने लगे। विरह ने प्रीत का रस चखा दिया और द्वितीय बार दर्शन होने से मेरा कुछ संकोच भी जाता रहा। पिता ने भी देखा और एक दिन मुझको बुला कर कहा, मैंने उदासी धर्म ग्रहण किया है और कुछ दिन देशाटन करूंगा तब तक तुम कहां रहोगी?'

मैं यह सुन कर रोने लगी और बोली मैं 'तुम्हारे सङ्ग चलूंगी' फिर जो प्राणेश्वर का ध्यान आ गया तो कहा 'नहीं तो जैसे काशी में अकेली रही थी उसी प्रकार अब भी रहूंगी।'
पिताने कहा 'नहीं मैंने एक उत्तम उपाय सोचा है जब तक मैं बाहर रहूं तब तक तुम महाराज मानसिंह की नवोढ़ा स्त्री के साथ रहना।'

मैं तुरन्त बोल उठी 'मैं तुम्हारे ही पास रहूंगी' पिता ने कहा 'नहीं मैं कहीं न जाऊंगा तुम मानसिंह के घर जाओ। मैं यहीं रहूंगा और नित्य तुमको देख आया करुंगा। जब मैं देख लूंगा कि तुम वहां कैसे रहती हो फिर वैसा प्रबन्ध करूंगा।'
हे युवराज! मैं उस दिन से तुम्हारे घर में रहने लगी और अपने प्राण प्रीतम से विलग हुई।

राजकुमार! मैं बहुत दिनों तक तुम्हारे पिता के घर में रही किन्तु तुम मुझ को नहीं चीन्हते। तब तुम्हारा वय केवल दश वर्ष का था और अपनी माता के साथ खेला करते थे। मैं तुम्हारी नबोढ़ा माता के संग दिल्ली में रहती थी। महाराज मानसिंह के पास स्त्रियां अनेक थीं तुम सब को थोही पहिचानते हो। योधपुर की उर्मिला तुमको स्मरण होगी उसके गुण का मैं तुमसे क्या वर्णन करूं। वह मुझको दासी करके नहीं मानती थी वरन भगिनी के

तुल्य जानती थी। उसने मुझको अनेक विद्या सिखायी। उसीके अनुग्रह से मैंने शिल्प विद्या सीखी और नाच गाना भी मैंने उसी के चित्त विनोद के निमित्त सीखा। यह पत्र उन्हीं देवी के अनुग्रह का फल है।

उसकी कृपा से और भी अनेक लाभ हुए। उसने मुझको महाराज तक पहुंचाया और वे मेरा नाच गाना देख सुन कर बहुत प्रसन्न हुए और मुझको अपनी करके समझने लगे। वे मेरे पिता को भी मानते थे और कभी कभी मेरे देखने को आया करते थे। उर्मिला के समीप रहकर मैने बड़ा सुख भोगा किन्तु एक दुःख था कि जिसके लिये सर्वस्व त्याग करने को प्रस्तुत थी वह मन मोहन नहीं मिला। वे क्या मुझको भूल गए? कदापि नहीं। युवराज! आसमानी नाम चेरी को क्या आप पहिचानते होंगे? उनके सङ्ग मेरी बड़ी प्रीत थी मैंने उसको प्रीतम का समाचार लेने को भेजा। उसने उनका पता लगाया उन्होंने अनेक प्रकार की बातें कहीं। उसके उत्तर में मैंने उनको पत्र लिखा। उन्होंने उसका प्रति उत्तर दिया और इसी प्रकार हमारे उनके पत्र व्यवहार होने लगा।

इस रीति से तीन वर्ष बीत गया और परस्पर विस्मरण नहीं हुआ तब मुझको प्रतीत हुई कि यह प्रीत कच्ची नहीं है। इसका कारण क्या था मैं नहीं कह सक्ती। एक दिन रात्रि को मैं अकेली अपने शयनागार में सोई थी और दीप मन्द ज्योति से जल रहा था कि एक मनुष्य की परछाई देख पड़ी और किसी ने मेरे कान में धीरे से कहा 'प्यारी डरो मत मैं तुम्हारा दास हूं।'
मैं क्या उत्तर देती ? तीन वर्ष पर भेंट हुई सब बातें खुल गई गले लग कर रोने लगी।

फिर मैंने पूछा 'तुम कैसे इस पुरी में पहुंचे?' उन्होंने कहा 'आसमानी से पूछो, उसको साथ लेकर पवन के रथ पर चढ़कर आया हूँ इसी लिये अभी तक छिपा था।'
मैंने पूछा 'अब?'
उन्होंने कहा 'अब क्या? तुम चाहो सो करो।'

मैं सोचने लगी कि अब क्या करूं कहां रक्खूं? इतने में किसी ने मेरे शयनागार का द्वार

खोला। देखूं तो महाराज मानसिंह आगे खड़े हैं। और क्या कहूं प्रीतम बन्दी कर लिये गए और दण्ड देने की भी आज्ञा हुई। मैं जाकर उर्मिला के चरण पर गिर पड़ी और सम्पूर्ण समाचार कह सुनाया। पिता से जब भेंट हुई उनके भी पैर पर गिर पड़ी। महाराज उनकी मानते थे और गुरू के तुल्य समझते थे मैंने उन से कहा 'आप अपनी ज्येष्ठ कन्या का स्मरण करें।' पर उन्होंने मेरी बात न सुनी जान पड़ता था कि महाराज की और उनकी एक मति थी। वरन रोष करके बोले 'पापिन! तू ने लज्जा संकोच सब छोड़ दिया' उर्मिला देवी ने मेरी रक्षा के निमित्त महाराज से बहुत कुछ कहा। महाराज बोले 'मैं इस चोर को छोड़ दूंगा यदि वह विमला से विवाह करले।'

मैं महाराज की मनोगति समझ चुप रही किन्तु प्राणेश्वर ने जब यह बात सुनी कहने लगे 'मैं बन्दी रहूंगा प्राणदण्ड भोगूंगा परन्तु शूद्री कन्या का अंगीकार कदापि न करूंगा। आप हिन्दू होकर ऐसा बात कहते हैं।'
महाराज ने कहा 'जब मैंने अपनी बहिन शाहजादा सलीम के सङ्ग ब्याह दी तो तुमको ब्राह्मण की कन्या ब्याहने कहता हूँ इसमें क्या आश्चर्य?'

पर उनके मन में न समाई। उन्होंने कहा 'महाराज जो होना था सो हो चुका अब आप कृपा करके मुझको बन्धन मुक्त कीजिये मैं अब विमला का नाम भी न लूंगा।'
महाराज ने कहा 'ऐसे तो तुम्हारे अपराध का प्रायश्चित नहीं होता। तुम विमला को त्याग दोगे तो दूसरा उसको कलंकिनी समझ कर ग्रहण नहीं करेगा।

अन्त को जब उनसे कारागार की कठिनता न सही गयी तो कुछ २ ढुले और बोले 'विमला यदि हमारे घर में दासी होकर रहे और इस विवाह के विषय में कभी किसी से कुछ न कहे तो मैं उससे विवाह करलूं नहीं तो न करूंगा।'

लगी बुरी होती है मैंने वही स्वीकार किया। मुझको धन सम्पत्ति और मान की लालसा न थी मैं तो केवल प्रीतम की अभिलाषी थी। पिता और महाराज की भी सम्मति हुई और मैं दासी का वेष धारण करके अपने भर्ता के गृह गई।

उन्होंने मुझको अपनी इच्छा के विरुद्ध पेंच में पड़ कर ग्रहण किया था, अतएव मुझको बैरी की भांति समझते थे। पूर्वकालीन प्रेम सब मिट्टी में मिल गया और महाराज मानसिंह कृत अपमान का टोकारा देकर मुझको निन्दित किया करते थे। मैं उसी में मगन थी। कुछ दिन के अनन्तर फिर मेरा सौभाग्य चमका और प्राणेश्वर मुझको चाहने लगे किंतु महाराज की ओर उनका वैसाही ध्यान रहा। विधना की करतूति! नहीं तो क्यों इस दशा को पहुंचते।

मैं तो अपना वृत्तान्त कह चुकी। बहुत लोग जानते होंगे कि मैं अपना कुल धर्म्म परित्याग कर मान्दारणगढ़ के स्वामी के पास रहती थी इसलिये मैंने आपको लिख भेजा है कि अब मैं मर जाऊं और लोग मुझको कलंक लगावें उस समय आप मेरी सहायता कीजियेगा।

इस पत्र में मैंने केवल अपना हाल लिखा है, जिसके संबाद जानने की आपको अनेक दिन से लालसा लग रही है उसका इसमें कुछ परिलेख नहीं है, आप उस नाम को अपने मन से भूल जाइये। तिलोत्तमा का अब ध्यान छोड़ दीजिये।

उसमान ने पत्र पढ़ कर कहा "माता तुम ने मेरी प्राण रक्षा की है अब मैं उसका प्रतिउपकार करूंगा"।

विमला ने ठंढी सांस लेकर कहा 'हमारा क्या उपकार आप कीजियेगा? और उपकार'-

उसमान ने कहा "मैं वही करूंगा।"

बिमला का बदन चमकने लगा और बोली "उसमान तुम क्या कहते हो? इस दग्धहृदय को अब ललचाते हो?"

उसमान ने हाथ से एक अँगूठी उतार कर कहा, यह अँगूठी लो दो एक दिन तो कुछ नहीं हो सकता ! कतलू खां की वर्ष गांठ समीप है उस दिन बड़ा उत्सव होगा। पहरे वाले मारे आनन्द के उन्मत्त हो जाते हैं। उसी दिन मैं तुम को मुक्त करूंगा तुम उस दिन रात को महल के द्वार पर आना यदि वहां कोई तुमको ऐसी हो दुसरी अंगूठी दिखावे तो तुम उसके सङ्ग हो लेना। आशा है कि निर्विघ्न निकल जाओगी’ आगे हरि इच्छा बलवान है।

विमला ने कहा परमेश्वर तुमको चिरंजीव रक्खें, और मैं क्या कहूं, और उसका हृदय भर आया और मुंह से बोली नहीं निकली ! आशीर्वाद देकर जब बिमला जाने लगी उसमान ने कहा "एक बात तुम से बता दें अकेली आना। यदि कोई तुम्हारे सङ्ग होगा तो काम न होगा। वरन उपद्रव का भय है।" .

बिमला समझ गई कि उसमान तिलोत्तमा को सङ्ग लाने का निषेध करता है और अपने मन में सोची कि यदि दो जन नहीं जा सकते तो अच्छी बात है तिलोत्तमा अकेली जायगी। विमला बिदा हुई ॥